सुधांशु रस्तोगी 3 सालमें II

कल्याण

वर्ष ३८] * * [अङ्क ४

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण—१,३८,०००

विषय-सूची

कल्याण सौर वैशाख २०२१ अप्रैल १९६४

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–भक्तवत्सल भगवान्‌के द्वारा अश्वोंकी परिचर्या [कविता]	८२१
२–कल्याण ('शिव')	८२२
३–परमार्थ-पत्रावली (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)	८२३
४–किसीके कुछ कहनेपर क्रोध आना अपने ही भीतरके मलका उभरकर बाहर निकलना है [कविता] (डॉ० श्रीरामदयालजी भार्गव)	८२८
५–हमारी मुक्तिनाथ-यात्रा (श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)	८२९
६–बवंडर—सूखे तिनके [कविता] (प्रो० श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण')	८३२
७–मधुर	८३३
८–समय बीतने दीजिये, आपके दुःख स्वयं दूर होंगे (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्या-भूषण, मानसशास्त्री, दर्शनकेसरी)	८३५
९–मुक्ति जो बन्धन बने, उस मुक्तिको ले क्या करूँगा ? (श्रीरामनाथजी 'सुमन')	८३९
१०–पुनर्जन्म [कहानी] (श्री'चक्र')	८४२
११–'सत्'में सुस्थित रहो [कविता]	८४५
१२–जगदम्बा श्रीसीताजी (श्रीहरेशचन्द्रजी अग्रवाल, एम्० ए०)	८४६
१३–अर्थ या अनर्थ ? (एक त्यागी संतके आदेशानुसार लिखित)	८५१
१४–नाम-साधनापर एक दृष्टि (पं० श्रीजयकान्तजी झा)	८५७
१५–युगधर्म (श्रीश्रीप्रकाशजी दुबे, एम्० ए०)	८६०
१६–फागुनके आम (श्रीगङ्गादत्तजी शास्त्री, साहित्यरत्न)	८६२
१७–वायुके झोंकेमें दीपक (डा० श्री वि० ए० शर्णे बी० एस्-सी०, पी-एच्० डी०)	८६७
१८–गौ-रहस्य (ठा० श्रीमानसिंहजी के० एस्०)	८६९
१९–गोभक्तिका चमत्कार (श्रीरामेश्वरदयालजी श्रीमाली बी० ए०, साहित्यविशारद)	८७२
२०–अवतारोंका कालक्रम (श्रीविश्वम्भरनाथजी द्विवेदी)	८७३
२१–बसो मोरे नैननमें नँदलाल [कविता] (संकलित)	८७५
२२–मत्स्यावतार [कविता] (साहित्याचार्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')	८७६
२३–'वैशाखके दो महान् दिवस' (श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)	८७७
२४–पढ़ो, समझो और करो	८८०

चित्र-सूची

१–वीणापाणि सरस्वती देवी	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२–भक्तवत्सल भगवान्‌के द्वारा अश्वोंकी परिचर्या	(तिरंगा)	८२१

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

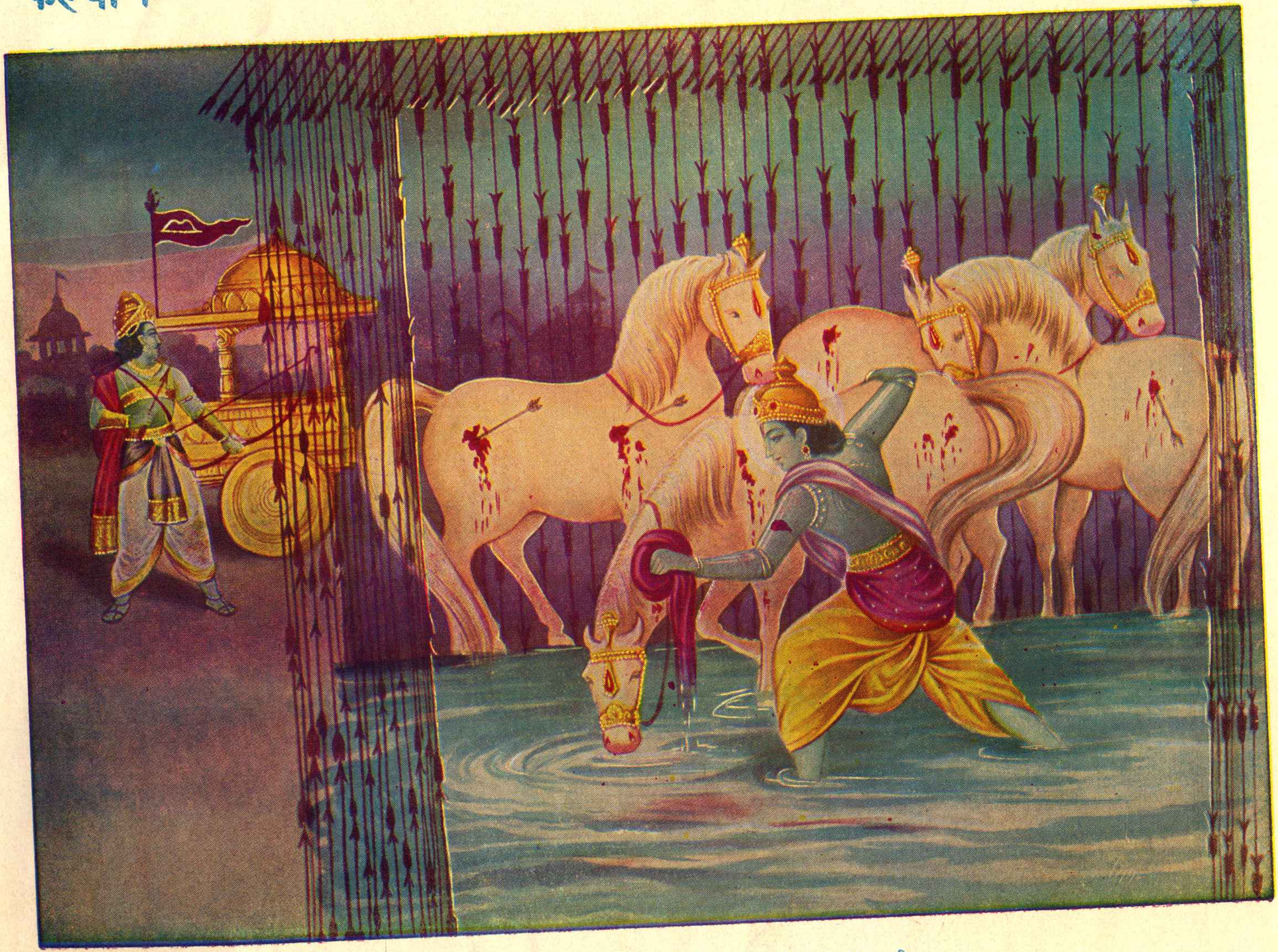

भक्तवत्सल भगवान्के द्वारा अर्जुनके अश्वोंकी परिचर्या

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

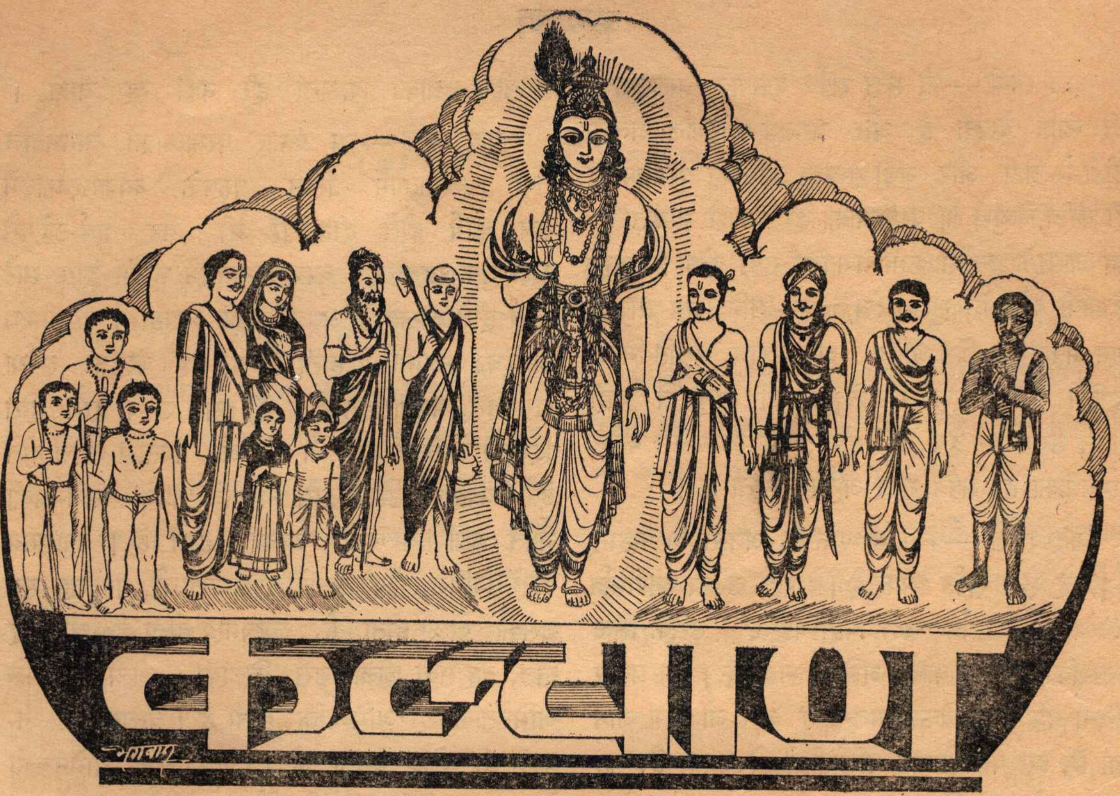

कल्याण

सर्वारिष्टहरं सुखैकरमणं शान्त्यास्पदं भक्तिदं स्मृत्या ब्रह्मपदप्रदं स्वरसदं प्रेमास्पदं शाश्वतम् ।
मेघश्यामशरीरमच्युतपदं पीताम्बरं सुन्दरं श्रीकृष्णं सततं व्रजामि शरणं कायेन वाचा धिया ॥

वर्ष ३८ } गोरखपुर, सौर वैशाख २०२१, अप्रैल १९६४ { संख्या ४
पूर्ण संख्या ४४९

भक्तवत्सल भगवान्‌के द्वारा अश्वोंकी परिचर्या

बढ़ते चले, शूर-मद मर्दन करते पार्थ जयद्रथ-ओर ।
कुरु-दल-दर्प-दलन द्रुत करते समरांगण रण दारुण घोर ॥
उतर पड़े रथसे, जब देखा अश्वोंको घायल अति श्रान्त ।
रोक लिये एकाकी सहसा सभी शूर भूपति दुर्दान्त ॥
किया प्रकट जलपूर्ण सरोवर कर पृथ्वीपर अस्त्राघात ।
रचा रुचिर परिचर्यागृह अश्वोंका, बाणोंसे विख्यात ॥
करने लगे चिकित्सा-सेवा स्वयं भक्तवत्सल भगवान ।
अश्व हुए अक्षत, उत्साहित, पुनः पूर्ववत् शक्तिनिधान ॥

याद रक्खो—जो सदा सर्वत्र एकमात्र परमात्माको ही व्याप्त देखता है और जगत्‌में होनेवाली प्रत्येक छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी घटनाको परमात्माका ही लीला-विलास या परमात्माका ही प्रकाश समझता है, वह जगत्‌के द्वन्द्वोंसे कभी प्रभावित नहीं होता। जगत्‌में दिखायी देनेवाले सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय, मान-अपमान, प्रिय-अप्रिय, शुभ-अशुभ, स्तुति-निन्दा आदिमें उसे अनुकूलता-प्रतिकूलताकी अनुभूति नहीं होती, उनमें राग-द्वेष नहीं होता; वह समभावसे केवल परमात्माका ही सर्वत्र सदा अनुभव करता है।

याद रक्खो—परमात्मा एक है, अनन्त है, महान् है। वह सदा सर्वत्र व्याप्त है। ये सारे उसीके आविर्भाव हैं; वस्तुतः सर्वत्र सदा वही वह है। उसके सिवा अन्य किसीका भी कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार जानना ही वास्तविक जानना है और जो ऐसा जान लेता है, इस परम सत्यमें परिनिष्ठित हो जाता है, वह सदा ही मोह-भय-विषादसे मुक्त रहता है।

याद रक्खो—इस विक्षुब्ध, परिवर्तनशील, अनित्य असत् प्रपञ्चके रूपमें सदा शान्त, सम, नित्य, सत्य परमात्मा ही अभिव्यक्त है। महासागरकी अनन्त तरङ्गें जैसे प्रशान्त महासागर ही हैं, उसी प्रकार यह सब परमात्माका ही स्वरूप है। तरङ्गोंका स्वभाव ही है उठना-मिटना; इससे न तो महासागरकी शान्तिमें कोई बाधा पड़ती है, न उसके स्वरूपमें ही कोई परिवर्तन होता है। इसी प्रकार परमात्मामें दीखनेवाला यह परिवर्तनशील प्रपञ्च परमात्म-स्वरूपकी सत्ता, चेतनता, आनन्दमयता, समता और एकतामें कोई भी परिवर्तन नहीं लाता। इस तत्त्वका अनुभव करना ही परमात्माके स्वरूपको जानना है।

याद रक्खो—जो परमात्माके इस स्वरूपको जान लेता है, वह स्वयं परमात्मस्वरूप ही हो जाता है; क्योंकि वहाँ परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसी सत्ताकी कल्पना ही नहीं रह जाती।

याद रक्खो—इस प्रकार परमात्माको जाननेवाले तथा परमात्मामें स्थित पुरुषके व्यवहार-कालमें सब कार्य होते दीखनेपर भी वह हर्ष-उद्वेगसे सदा मुक्त रहता है। व्यवहार-जगत्‌में उसके द्वारा सारे कार्य होते दीखते हैं अथवा उसके व्यवहारमें राग-ममता आदिकी कल्पना भी होती है, पर वह वस्तुतः सर्वथा रागरहित, ममतारहित होता है, इससे उसके द्वारा होते दिखायी देनेवाले कार्य भी राग और ममतासे रहित होते हैं। व्यवहारमें उसके द्वारा नाटकके पात्रके अभिनयकी भाँति यथायोग्य सारे आचरण होते हैं। यथासमय उसमें विभिन्न रसोंकी चेष्टाएँ देखी जाती हैं, पर वह सब उसका खेल होता है, लीलामात्र होती है; और वह खेल, वह सारी लीला उस खिलाड़ी—लीला करनेवाले अभिनेताकी ही अभिव्यक्ति होती है। वस्तुतः खेलनेवाला ही खेल बनता है। दर्शक उसके अभिनयको देखकर भयभीत, चकित, हर्षित, क्षुब्ध, शान्त, अशान्त होते हैं, पर वह सदा स्वरूपस्थित निर्विकार रहता है, इसी प्रकार वह परमात्माके तत्त्वको जाननेवाला परमात्मामें स्थित पुरुष भी नित्य स्वरूपस्थित शान्त रहता है।

याद रक्खो—परमात्मज्ञानी यदि प्रवृत्तिमय व्यवहार-जगत्‌में है तो उसके द्वारा विभिन्न क्रियाएँ होती देखी जाती हैं, पर वे सारी क्रियाएँ स्वाभाविक ही सर्वहित, सर्वकल्याण करनेवाली हैं। उसके द्वारा उसी प्रकार किसीका कभी अकल्याण नहीं होता, जैसे अमृतके द्वारा कोई मरता नहीं।

याद रक्खो—व्यवहार-जगत्‌में ऐसे महापुरुषका अस्तित्व जगत्‌का—जगत्‌के समस्त प्राणियोंका परम कल्याण करनेवाला होता है, वह सबका पथप्रदर्शक होकर सभीको परमात्माके स्वरूपकी उपलब्धि करानेमें सहायता करता है। वह स्वयं तो मुक्त होता ही है, अन्य अनेकोंकी मुक्तिका निमित्त बनता है।

'शिव'

परमार्थ-पत्रावली

(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

(१)

प्रेमपूर्वक हरि-स्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार विदित हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) भगवान्‌के दर्शन भगवान्‌की कृपासे होते हैं; उनकी कृपापर श्रद्धापूर्वक दृढ़ विश्वास होना आवश्यक है। विश्वासपूर्वक भगवान्‌को अपना सर्वस्व मान लेनेपर जब उनसे सम्बन्ध हो जाता है, तब उनकी मधुर स्मृति जाग्रत् होकर प्रेम प्रकट हो जाता है। भजन-ध्यान प्रभुसे सम्बन्ध जोड़कर विश्वासपूर्वक करना चाहिये एवं प्रभुकी कृपाके बलपर उनके दर्शनोंकी प्रतीक्षा करते रहना चाहिये। जब साधक उनको देखनेके लिये अतिशय व्याकुल हो जाता है, प्रेममें अधीर हो जाता है और उनसे मिलनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाती है, तब प्रभुको दर्शन देना ही पड़ता है।

(२) भगवान्‌के लिये कोई छोटा-बड़ा नहीं है। अतः यह शङ्का उठनी ही नहीं चाहिये कि वह हम-जैसोंको दर्शन दे सकते हैं या नहीं। जो जितना नीचा है, जिसके पास जितना अभाव है, वह उतना ही उनके दर्शनका अधिक पात्र है, पर दर्शनकी विशेष लालसा होनी चाहिये। आपको भगवान्‌ने दर्शन नहीं दिये—इसका कारण देखनेसे आपको ज्ञात हो सकता है। आप उनके लिये विशेष व्याकुल नहीं हुए होंगे।

(३) चार-पाँच साल पहले जब आप नियमोंके पाबंद रहते थे, तब सम्भव है किसी सुख या मान-बड़ाईकी इच्छा आपके मनमें रही होगी। उसकी पूर्ति न होनेके कारण अब उन नियमोंमें रुचि नहीं रही होगी, मानसिक स्थितिको बलपूर्वक रुचिके विरुद्ध आपने दबाया होगा, उनका महत्त्व जानकर उन नियमोंका पालन नहीं किया होगा। यदि आपको उनके महत्त्वका परिचय होता तो उन नियमोंका पालन आपके द्वारा स्वाभाविक ही होने लगता; फिर उनका त्याग आपसे नहीं होता।

भगवान्‌ने कृपा करके आपको ऐसी परिस्थिति दी, जिससे आप सचेत हुए। अब फिर कभी नियमोंको भंग करनेका संकल्प मनमें न आने दें।

प्रभुकी कृपाके बलपर सब प्रकारके भोगोंकी कामनाका त्याग करनेसे मन और इन्द्रियाँ सहज ही वशमें हो सकते हैं। यह मन तभीतक परेशान करता है जबतक आप स्वयं इसके द्वारा सुख भोगना चाहते हैं। आपकी स्थिति ठीक रहनेपर मनकी स्थिति अपने-आप हर समय ठीक रह सकती है। मनका कोई दोष नहीं है। यह तो जो कुछ करता है, आपका बल पाकर ही करता है।

(४) × × × ×। सत्सङ्गके समाचार ऊपर लिखे ही हैं।

(५) भगवान्‌में प्रेम होनेपर उनका चिन्तन-स्मरण अनायास ही हर समय रह सकता है।

(६) अनात्मामें जो आत्मभाव कर रक्खा है, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदिके समुदायमें जो 'मैं'भाव और 'मेरा'भाव है, इसके त्यागसे ही आत्मज्ञान हो सकता है।

(७) चित्त शुद्ध होनेपर ही स्थिर और शान्त हो सकता है। बुरे और व्यर्थ संकल्पोंका त्याग करने अर्थात् किसीका बुरा न चाहनेसे और सांसारिक भोगोंकी आशाका त्याग करनेसे भी चित्त शुद्ध हो सकता है। चित्तकी शुद्धिसे ही आत्माका उद्धार होता है। भावकी शुद्धि ही सर्वोपरि साधन है।

(२)

सादर हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । समाचार विदित हुए । उत्तर क्रमसे इस प्रकार हैं—

(१) गायत्री-जपका आरम्भ सूर्योदयसे पहले करना तो बहुत ही अच्छा है, परंतु सूर्योदयके बाद भी करना कोई दोष नहीं है। स्नान-संध्यादिसे शरीर-शुद्धि करके चाहे जिस समय जप किया जा सकता है । अन्य सब नियमोंकी बात ज्ञात हुई । एक बात खास याद रखनी चाहिये कि किसीका भी किसी प्रकार कभी अहित करनेकी इच्छा नहीं करना ।

(२) शामको भी संध्या करके कम-से-कम एक माला गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये । मध्याह्नकालमें न किया जाय तो कोई खास बात नहीं है ।

(३) सुबह नित्यकर्मके बाद सूर्य भगवान्को अर्घ्य देना ठीक ही है । जल प्रदान करते समय एक पैरसे खड़े होनेमें कष्ट होता हो तो दोनों पैरसे खड़े होकर भी अर्घ्य दिया जा सकता है ।

(४) श्रीशिवजीपर जल चढ़ाना, तुलसीपर जल चढ़ाना, पीपलको जल चढ़ाना—यह सब अच्छा है, पर ये सब काम प्रभुके आज्ञा-पालनके रूपमें उन्हींकी प्रसन्नताके लिये ही करने चाहिये । इन सबसे किसी प्रकारकी कामना नहीं करनी चाहिये ।

(५) भगवान्का प्रेम तो उनके साथ सम्बन्ध स्थापन करनेपर, उनको श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अपना मानकर भजन-ध्यान करनेपर ही हो सकता है। प्रभुकी कृपासे ही प्रभु-प्रेम मिलता है । अतः उनकी कृपाके बलपर प्रेमकी प्रतीक्षा करनी चाहिये और जबतक प्रेम प्राप्त न हो, उसके लिये व्याकुल हो जाना चाहिये ।

(६) पत्नीको क्या करना चाहिये, उसका क्या कर्तव्य है—यह बात पतिके देखनेकी नहीं है; पतिको तो अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये । अपने साथीके कर्तव्यपर दृष्टि रखनेवाला मनुष्य अपना कर्तव्य-पालन नहीं कर पाता तथा वह क्षोभ और अशान्तिसे भी नहीं बच सकता ।

पत्नी यदि अपना कर्तव्य जानना चाहती हो तो कहा जा सकता है कि उसे पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये और हर प्रकारसे पतिको प्रसन्न रखना चाहिये । पतिके पैर छूकर उनको प्रणाम भी करना चाहिये और हर प्रकारसे अपने पतिकी सेवा करनी चाहिये ।

(३)

सादर हरि-स्मरण । आपका पत्र मिला । समाचार विदित हुए । आपने लिखा कि मैं श्रीहनुमान्जीका ध्यान उनका चित्र सामने रखकर करता हूँ सो अच्छी बात है।

रातमें रामायणका पाठ करना आरम्भ किया, यह भी अच्छी बात है । श्रीशंकरके विवाहका प्रसङ्ग पढ़ते समय अधिक आनन्द क्यों आता है और दूसरे प्रसङ्गोंमें क्यों नहीं आता ? इसपर विचार करना चाहिये ।

प्रश्नोंके उत्तर क्रमसे इस प्रकार हैं—

(१) किसी भी वस्तुकी याचना न तो भगवान्से करनी चाहिये, न हनुमान्जीसे और न अन्य किसीसे भी; क्योंकि जो वस्तु शास्त्रीय विधानके अनुसार मिलनेवाली है, वह बिना याचनाके भी अपने-आप मिले बिना नहीं रहती । प्रतिकूल परिस्थितिकी कोई याचना नहीं करता, पर वह आती अवश्य है ।

याचना करनेपर भी जो आपकी इच्छा पूरी नहीं हुई, यह हनुमान्जीकी कृपा है । यदि वे आपकी इच्छा पूरी कर देते तो आपके मनमें नयी-नयी इच्छाएँ उत्पन्न होने लगतीं और वे कभी समाप्त नहीं होतीं ।

(२) आप हनुमान्जीके भरोसेपर सांसारिक काम

करते हैं, यहींसे गलती आरम्भ होती है। आपको विचार करना चाहिये कि क्या यह मामूली पूजा-उपासनाका लोभ देकर हनुमान्‌जीसे अपना मतलब गाँठना नहीं है? क्या उनको ठगनेका उपक्रम नहीं है? इस तरहकी ठगाईमें भला, हनुमान्‌जी-जैसे प्रभु-भक्त कैसे आ सकते हैं!

(३) हनुमान्‌जी प्रभुके भक्त हैं, इसलिये वे किसीका बुरा करें—यह तो सम्भव ही नहीं है। वे तो उपासकका हित ही करते हैं। अपने इष्टको अपशब्द कहना तो बन ही कैसे सकता है?

आपको ध्यान करते-करते जो श्रीहनुमान्‌जीपर क्रोध आ जाता है, यह आपकी बहुत ही बे-समझी है। क्रोधका कारण उनसे कामनापूर्तिकी आशा करना और उसका पूर्ण न होना है, जो सर्वथा अनुचित है। अपने इष्टका अनादर करना तो उनकी महिमाको न जानना सिद्ध करता है।

(४) आपने जो पद लिखे हैं, वे 'शिवमहिम्नः-स्तोत्र'के नहीं हैं। भगवान् शंकरने किस समय और क्यों हरिणका वेष धारण किया था, यह मुझे पता नहीं है।

भगवान् राम श्रीशंकरको अपना इष्ट इसलिये मानते हैं कि शंकर श्रीरामको अपना इष्ट मानते हैं। भगवान्‌का यह नियम है कि जो जिस भावसे मुझे भजता है, मैं भी उसे उसी भावसे भजता हूँ। भगवान् शंकर श्रीरामके कामनारहित भक्त ठहरे; अतः राम उनको वस्तु देकर तो संतुष्ट कर नहीं सकते। निष्कामी भक्तको तो प्रेमके बदलेमें प्रेम ही दिया जा सकता है।

(४)

सादर हरि-स्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। आप अपनेको ईश्वरभक्त मानते हैं, यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) आपकी रुचि संस्कृत पढ़नेकी प्रबल है और आपके पिताजी दूसरी भाषा पढ़नेके लिये बाध्य करते हैं, इस परिस्थितिमें आपको घबराना नहीं चाहिये। ऐसा समझकर कि पिताजीकी आज्ञाका पालन करके उनके मनकी बात पूरी करनेसे मुझे प्रभुकी प्रसन्नता, उनका प्रेम प्राप्त होगा, अपने मनका आग्रह छोड़कर पिताजीके आज्ञानुसार पढ़ना चाहिये। इस कमजोरीको मनसे उठा देना चाहिये कि मैं कर ही क्या सकता हूँ। प्रभुकी कृपासे आप सब कुछ कर सकते हैं, तो भी आपको करना वही है, जो इस समय प्रभु कराना चाहते हैं। इस भावनामें ही आपका परम हित है। यदि प्रभु चाहेंगे, वे समझेंगे कि संस्कृत पढ़ना आवश्यक है तो अपने-आप वैसी परिस्थिति आपको प्रदान कर सकते हैं और बहुत थोड़े कालमें उस विद्याका आपको वह ज्ञान हो सकता है, जो दस-बारह वर्ष अभ्यास करनेवाले अच्छे-अच्छे आचार्य-परीक्षोत्तीर्ण वैयाकरणोंको नहीं होता। अतः जब आपने अपनेको प्रभुका सेवक मान लिया तो फिर चिन्ता किस बातकी?

(२) घर-बार छोड़कर हिमालयमें जानेमात्रसे कोई योगी नहीं बन सकता। वहाँ भी सब प्रकारके मनुष्य रहते हैं; वहाँ रहनेवाले सब योगी हों—ऐसी बात नहीं है।

संसारको असार समझनेकी सार्थकता तो इसीमें है कि उसमें अभिमान और ममता न रहे, उससे सुखकी आशा न की जाय, उसे साधनकी सामग्री समझकर उसके द्वारा समस्त प्राणियोंमें विराजमान अपने प्रभुकी कर्तव्य समझकर सेवा करता रहे। बदलेमें उनसे कुछ चाहे नहीं। हर परिस्थितिमें अपने प्रभुका स्मरण करते हुए उसके प्रेममें निमग्न रहे। गीताके छठे अध्यायमें बतलाये हुए 'योग' के लिये हिमालयमें जाना आवश्यक नहीं है। गीताके छठे अध्यायका पहला श्लोक देखिये और उसपर विचार कीजिये।

घरवाले आपका विवाह करना चाहते हैं तो धर्मानुकूल विवाह करनेमें कोई बुराई नहीं है । गृहस्थ-सुखकी आसक्ति मिटानेके लिये विवाह भी साधन बन सकता है ।

(३) आपके घरवाले यदि ऐसा भोजन करते हों, जिसमें प्राणियोंकी हिंसा या समाजका अहित होता हो तो उनसे विनम्र प्रार्थना कर देनी चाहिये कि इस प्रकारके भोजनमें मेरी रुचि नहीं है । राजसी और तामसी भोजन आप स्वयं न करें—यह बहुत ही अच्छा है । पर घरवाले जो वैसा भोजन करते हैं, उनको अपनेसे नीचा न समझें, उनकी बुराई या निन्दा न करें, अपनेमें अच्छेपनका अभिमान न करें । किसी भी अच्छाईका अभिमान सब प्रकारके दोषोंको उत्पन्न करनेवाला है । अपवित्रताको हटानेके लिये रसोई बनानेवालोंसे विनम्रभावसे प्रार्थना करें । वे न सुनें तो उस दिन भोजन न करें, पर इस बातके कारण किसीपर क्रोध न करें । पूछनेपर नम्रतासे कह दें कि 'क्या करूँ, मेरी रुचि ऐसे भोजनपर नहीं होती; अतः मेरी धृष्टताको आप क्षमा करें ।' ऐसा करनेसे न तो आप नीचे गिरेंगे, न आपकी मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक हानि ही होगी ।

(४) भगवान्में प्रेम, जगत्में वैराग्य और गीता-पाठ एवं भजन-स्मरणमें अधिक समय लगानेके कारण जो घरके लोग आपपर क्रोध करते हैं, इसमें भी आपको प्रभुकी कृपाका ही दर्शन करना चाहिये । समझना चाहिये कि प्रभुने मेरे प्रेमको सुदृढ़ बनानेके लिये कृपा करके यह परिस्थिति उपस्थित की है । यदि घरवाले मेरा आदर करते तो मैं अपनेको भक्त मानकर अभिमान करने लगता । भगवान्का दास न बनकर मान-बड़ाईका दास बन जाता और मेरी इच्छा पूरी करनेवालोंमें मेरी आसक्ति हो जाती । इन सब विघ्नोंसे बचानेके लिये ही भगवान्ने ऐसा किया है । अतः घरवालोंको जो आप अपने मार्गमें कण्टक समझते हैं, यह मान्यता ठीक नहीं है । उनका कोई दोष नहीं समझना चाहिये । आप भक्त प्रह्लादके चरित्रपर ध्यान दीजिये । क्या आपके घरवाले हिरण्यकशिपुके समान आपके विरोधी हैं ? क्या प्रह्लादने कभी स्वप्नमें भी अपने पिता और गुरुओंपर क्रोध किया ? उनको अपने मार्गमें कण्टक समझा ? कभी नहीं; वे तो हर हालतमें उनका हित ही चाहते रहे ।

(५) माता-पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये आप विवाह कराना स्वीकार कर सकते हैं पर ऐसा काम नहीं करना चाहिये, जिसमें धर्मका विरोध हो, जिसे भगवान् न चाहते हों । इसके सिवा सभी करने योग्य कार्योंमें उनकी आज्ञा मानना बहुत उपयोगी है । भक्त प्रह्लादने न तो विवाहसे इन्कार किया और न विद्या पढ़नेसे ही, पर प्रभुकी भक्तिका त्याग किसी हालतमें करना स्वीकार नहीं किया । इसे सामने रखकर विचार करना चाहिये ।

(६) भगवान् ही सबके परम गुरु हैं । उनके सम्मुख हो जाना, अपनेको उनके समर्पण करके एकमात्र उन्हींको अपना मान लेना ही गुरुके सम्मुख होना है । जब आप अपनेको प्रभुके भक्त मानते हैं, तब यह नहीं मानना चाहिये कि मैं गुरुके सम्मुख नहीं हुआ । जो लोग कहते हैं कि गुरुके सम्मुख हुए बिना मुक्ति नहीं होती, वे इस रहस्यको नहीं समझते कि सचमुच गुरुके सम्मुख होना क्या है । अतः उनके कहनेका कोई मूल्य नहीं है । आप यदि शूद्र जातिमें उत्पन्न हैं तो आपको यज्ञोपवीतकी आवश्यकता नहीं है । भगवद्भक्तिमें सभी जातियोंका अधिकार है । भगवान्के लिये तो सब एक हैं; जो उनसे प्रेम करना चाहते हैं, उन्हींको वे अपना लेते हैं ।

(७) नीच कुलमें जन्म होनेके कारण जो आपके मनमें तरस आती है, यह भूल है । इसका तत्काल त्याग कर देना चाहिये । यह समझना कि मैं ऊँचे कुलमें उत्पन्न होता तो मुझे भगवत्प्राप्तिमें विशेष सहायता मिलती,

यह भ्रम है; क्योंकि ऊँचे कुलमें जन्म होनेसे जातिका अभिमान हो सकता है, जो कि भक्तिमार्गमें विघ्न है। श्रीकबीरदास, रैदास, शबरी आदि अनेकों भक्तोंने ऊँचे कुलमें उत्पन्न न होकर भी बड़ी सुगमतासे प्रभुका दर्शन प्राप्त किया है और बड़े-बड़े ऋषिलोग उच्च कुलमें उत्पन्न होकर भी अभिमानवश नीचे गिर गये। अतः वास्तवमें बड़ा वही है, जो अपने वर्णधर्ममें स्थित है, अपने कर्तव्यका पालन करता है और उसके द्वारा अपने प्रभुकी सच्ची पूजा करता है। इसलिये आपको सर्वथा निश्चिन्त और व्यथारहित रहना चाहिये।

(५)

सादर हरि-स्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार विदित हुए। आपके प्रश्नोंके उत्तर क्रमसे इस प्रकार हैं—

(१) एक गृहस्थको वर्षभरमें कितने त्यौहार मनाने चाहिये, कितने व्रत पालन करने चाहिये—इसका सबके लिये एक विधान नहीं हो सकता; क्योंकि सबकी श्रद्धा, रुचि और योग्यता समान नहीं होती। अतः इसके विषयमें यही मानना ठीक है कि जिस उत्सव और व्रतमें जिसकी जितनी श्रद्धा, विश्वास और रुचि हो, जिसे वह बिना किसी प्रकारकी कठिनाईके कर सकता हो, वही उसे निष्कामभावसे उत्साहपूर्वक करना चाहिये। उसमें मान-बड़ाईकी कामना नहीं होनी चाहिये।

व्रत-पालनके दिन—(क) किसी भी प्राणीको अपनी ओरसे किसी प्रकार भी कष्ट नहीं देना चाहिये। किसीके दोष नहीं देखने चाहिये। किसीपर क्रोध नहीं करना चाहिये। मनसे भी किसीका अहित नहीं चाहना चाहिये। सत्य, प्रिय और हितकारक वचन बोलना चाहिये। मौन रहकर प्रभुका स्मरण और नाम-जप करना चाहिये। सद्ग्रन्थका अध्ययन करना चाहिये। ऐसे वचन नहीं बोलने चाहिये, जो किसीके मनमें उद्वेग करनेवाले हों, जो कठोर हों और जो अप्रिय हों।

(ख) किसीकी वस्तुका अपहरण नहीं करना चाहिये। किसीसे कुछ लेनेकी न तो कामना करनी चाहिये, न स्वीकार ही करना चाहिये। जहाँतक हो सके, निष्कामभावसे सेवा करनेका भाव रखना चाहिये।

(ग) ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। स्त्री और पुरुषको किसी प्रकारकी भी काम-वासनाका उदय नहीं होने देना चाहिये। उस विषयकी पुस्तक आदि नहीं पढ़नी चाहिये, चित्र नहीं देखने चाहिये। खेल-तमाशा, नाटक-सिनेमा आदि नहीं देखना चाहिये। इस विषयकी परस्पर किसीसे बातचीत भी नहीं करनी चाहिये। विषय-भोगकी सामग्रीके सम्बन्धका त्याग करना चाहिये।

ये सब तपके ही अङ्ग हैं। इनके पालनसे चित्त शुद्ध होता है। व्रत, उपवास आदिका विधान चित्त-शुद्धिके लिये परम आवश्यक है।

(२) श्रीरामचन्द्रजी जब वनमें थे, तब हरिणोंको कभी नहीं मारते थे। जो हिंसक पशु ऋषि-मुनियोंको वनमें कष्ट देते थे एवं वनके अन्य मनुष्यों और पशुओंको मार डालते थे, उन्हीं पशुओंको वे मारते थे। यह क्षत्रियोंका धर्म है। 'मृग' शब्द सभी वनमें रहनेवाले पशुओंका वाचक है, केवल हरिण-जातिका ही वाचक नहीं है। यह बात तुलसीकृत रामायणमें राजा प्रतापभानुकी शिकारयात्राके प्रसङ्गमें स्पष्ट है। उस यात्रामें उन्होंने जिस सूअर रूपधारी-राक्षसका पीछा किया था, वह हरिण नहीं था, पर उस प्रसङ्गमें उसको चार बार 'मृग' कहकर पुकारा गया है।

(३) साधारण गृहस्थमें पत्नीका कर्तव्य है पतिकी सेवा करना, उनसे प्रेम करना, उनकी आज्ञा मानना, उनके हितमें रत रहना, उनपर क्रोध न करना, उनको सब प्रकारसे सुख देना तथा उनसे किसी प्रकारके सुखकी कामना नहीं करना—इत्यादि। इसी प्रकार पतिका

कर्तव्य है अपनी पत्नीको अपनी अर्धाङ्गिनी मानना, उसकी आवश्यकताको समझकर यथाशक्ति पूरी करना, हर प्रकारसे उसे सुख देना, उसका अपमान न करना, कठोर वचन न कहना, उसपर क्रोध न करना, उसे घरकी स्वामिनी समझना, हर-एक गृहस्थके कार्योंमें मित्रकी भाँति उससे सलाह करना एवं घरके सभी व्यक्तियोंका यथावश्यक पालन-पोषण करना।

गृहस्थमें सुख-शान्ति सुरक्षित रखनेके लिये हर-एक व्यक्तिको चाहिये कि अपने-अपने कर्तव्यका पालन करे, दूसरेकी भूल न देखे, अपनी भूलको समझकर उसका सुधार करे, अपने अधिकारका त्याग करे और दूसरेके अधिकारका आदर करे।

घरके अन्य कुटुम्बीजनोंको यदि कष्ट हो तो उसे दूर करना पति और पत्नी दोनोंका ही कर्तव्य है। पतिको हर प्रकारसे पत्नीको उसके कर्तव्य-पालनमें मदद देनी चाहिये, उसी प्रकार पत्नीको भी पतिके कर्तव्य-पालनमें मदद देनी चाहिये। घरकी आर्थिक कठिनाईमें मदद देनेके लिये यदि पत्नी स्त्री-वर्गके साथ रहकर किसी प्रकारका परिश्रम करके न्याययुक्त अर्थोपार्जन कर सके तो मेरी समझमें कोई बुराई नहीं है, प्रत्युत अच्छा ही है।

(४) × × ×

(५) प्रभु अपने कर्तव्यमें कभी नहीं चूकते—यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये और उनसे कभी निराश नहीं होना चाहिये। निराश होना चाहिये संसारसे। उससे की हुई इच्छा कभी पूरी नहीं होती। जिसको सुखकी चाह नहीं और दुःखसे भय नहीं, वह किसीके दुःखमें कारण नहीं बन सकता तथा यदि किसीको कष्ट होता है तो उसके दुःखसे वह दुखी हो जाता है और शक्ति-भर उसके दुःख-निवारणमें सहयोग देता है, यही उसका कर्तव्य है।

आप यदि स्वयं किसीको दुःख देना नहीं चाहतीं और अपनी ओरसे किसीको दुःख देतीं भी नहीं, इस परिस्थितिमें यदि कोई अपने दुःखका कारण आपको बतावे तो इस बातको सुनकर आपको दुःख नहीं मानना चाहिये, बल्कि उनको दुखी देखकर आपको दुःख होना चाहिये।

किसीके कुछ कहनेपर क्रोध आना अपने ही भीतरके मलका उभरकर बाहर निकलना है

(रचयिता—डॉ० श्रीरामदयालजी भार्गव)

नीरमस्वच्छतां याति निर्मले वै सरोवरे।
पाषाणं क्षेपितं यस्मिन्नुपर्यायाति तन्मलम्॥
पाषाणवद्धि वाक्येन क्रोधाक्रान्तो भवाम्यहम्।
सोऽपि नूनं विकारो मे हृदयाद् बहिरागतः॥
कथं दोषः कुवाक्यस्य मलं येन प्रदर्शितम्।
उपकारं मन्यमानो यतिष्ये तन्निवारणे॥
समुद्रवत् तु गम्भीरं सहिष्णुं पृथिवीमिव।
निर्मलं चन्द्रवत् कुर्याद् इति मे प्रार्थनानिशम्॥

निर्मल नीर सरोवरमें जब पत्थर फेंका जाता है।
अन्तर्मल ऊपर आ जाता जल अस्वच्छ हो जाता है॥
पत्थर सदृश कठोर शब्दोंसे मुझे क्रोध जो आता है।
अंदर छिपा हृदय-मल मेरा ही ऊपर आ जाता है॥
कुवचनका क्या दोष जो अन्तर्मल निकाल दिखलाता है।
मैं उपकार मानता जो यों मलको दूर हटाता है॥
सागरवत् गंभीर बना दो, क्षमी सहिष्णु धरित्रि समान।
विधुसम विमल बना दो, मेरी यही नित्य विनती भगवान॥

हमारी मुक्तिनाथ-यात्रा

(लेखक—श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

[पृष्ठ ७८५ से आगे]

मुक्तिनाथसे दामोदरकुण्ड

मुक्तिनाथसे ही दामोदरकुण्डको जाते हैं। इसी कुण्डसे नारायणीगण्डकी निकलती है, जो काकबैंनीमें कालीगण्डकी-से मिलती है। मुक्तिनाथसे दामोदरकुण्डका मार्ग बड़ा ही निकट है। बड़ा ऊबड़-खाबड़ बताते हैं, मार्गमें कोई ग्राम नहीं—ठहरनेका स्थान नहीं। साधु-संत वहाँ जाते हैं। हमारी बहुत इच्छा थी, दामोदरकुण्ड जायँ; किंतु इतने आदमियोंको लेकर जा नहीं सकते थे। इन्हें छोड़कर जाना भी न्यायसंगत नहीं समझा। अतः हमने वहाँका जाना स्थगित कर दिया। वैसे दो-तीन आदमी ऐसे हों, जिन्हें घर-द्वारकी चिन्ता न हो, जो 'आगे नाथ न पीछे पगहा'—इस कहावतके अनुसार स्वतन्त्र हों तो दामोदरकुण्ड-यात्रा कोई कठिन नहीं है। मुक्तिनाथ-जीसे कुल तीन दिनोंका ही रास्ता बताते हैं। मुक्तिनाथसे नरसिंहखोला फिर तांक्यागाँव, तदनन्तर धूसीवास स्थान मिलता है। वहाँसे आगे नकली दामोदरकुण्ड, फिर उससे आगे सकली दामोदरकुण्ड है। दामोदरकुण्डमें सूखी तुलसी डाल दो तो वह डूब जाती है। कहते हैं यहाँ भगवान्‌की आज्ञासे विश्वकर्मा ही काले कीटके रूपमें रहते हैं। वे या तो सुवर्ण खाते हैं या तुलसी। शालग्रामके भीतर सुवर्ण होता है, उसे खानेको ही ये कीट उसमें चक्र बनाते हैं और चक्र बनाकर वहीं मर जाते हैं। बहुत-से भोटिया शालग्रामको फोड़-फोड़कर सुवर्ण निकालते हैं। वैसे नैपाल सरकारकी ओरसे एक पत्थरपर आज्ञापत्र खुदा है कि जो शालग्रामको फोड़कर सुवर्ण निकालेगा, उसे राज्य भारी-से-भारी दण्ड दे सकता है; किंतु कौन मानता है इस आज्ञाको। वहाँ कोई पुलिस-फौज तो बैठी ही नहीं है। दामोदरकुण्डके आसपास गजेन्द्रमोक्ष-सरोवर, चक्र-सरोवर, देवह्रद, विष्णुकुण्ड आदि बताते हैं। जलज शालग्राम यहीं नरसिंहखोला, दामोदरकुण्ड तथा शालग्रामीमें मिलते हैं। स्थलज शालग्राम इन पर्वतोंमें गण्डकीमें जो भी शिला गिरती है, सभी शालग्राम हैं। थाकाटुकचेतक सब शालग्राम-ही-शालग्राम हैं। चक्राङ्कित कठिनतासे मिलते हैं। दामोदरकुण्डकी यात्रा करके फिर मुक्तिनारायण ही लौटना पड़ता है। हम तो दामोदरकुण्ड गये ही नहीं। मुक्तिनारायणसे ही लौट आये। अतः आगे संक्षेपमें लौटनेका ही वृत्तान्त सुनिये।

मुक्तिनाथसे झुमसा

(आषाढ़ कृष्ण ६, १३ जून)

दो रात्रि हम मुक्तिनाथजीमें रहे। आषाढ़ कृष्ण ६ को प्रातः श्रीमुक्तिनाथजीके दर्शन करके उनसे विदा लेकर जो उतरे, तो मानो कोई ढकेल रहा हो। दो दिन विश्राम ले लिया। मुक्तिनारायणजीके दर्शन हो गये, संकल्प पूरा होनेसे मनमें प्रसन्नता थी, उत्साह था। एक ही साँसमें नीचे आ गये। रात्रिकी खीरको गंगादत्त बचा लाया था, उसकी लोगोंने मुझसे शिकायत की। हँसी होती रही। अब काकबैंनी तो जाना नहीं; सीधे ही चले और चलते ही गये। झट झुमसा आ गये। अपने भारतीय पुलिसके बन्धु मिल गये। आज नैपाल महाराजके जन्मदिनका उत्सव था। नैपाली कैप्टन राणाजीने हमें विशेष अतिथिके रूपमें अपनी सेनामें आमन्त्रित किया।

हमलोगोंके पास खर्च समाप्त हो गया था। नैपाल राज्यमें द्रव्यादेश (मनीआर्डर) बीमा, चेक कुछ भी नहीं आता। हमने भारतीय पुलिसद्वारा काठमाण्डू दूतावासको बिना तारके द्वारा सूचना दी। उन्होंने गीताप्रेस, गोरखपुर-को तारद्वारा सूचना दी। गीताप्रेसवालोंने अपना आदमी बुटवल भेजकर हमें द्रव्य दिया।

रात्रिमें सैनिकोंका सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने गये। सैनिकोंमेंसे ही सभी पात्र बने थे। बहुत देरतक मनोरञ्जन होता रहा। अर्धरात्रि बीतनेपर हम उठकर झुमसामें सो गये।

झुमसासे कालापानी

(आषाढ़ कृष्ण ७, १४ जून)

झुमसासे चलकर थाकटुकचामें भोजन-प्रसाद बना। अपना रक्खा सामान लिया और भोजनोपरान्त चल दिये। दिन डूब गया, कहीं रहनेको स्थान ही नहीं मिला।

कालापानीमें जैसे-तैसे एक सैनिकके प्रयत्नसे आश्रय मिला। कुली सामान लेकर नहीं आ सके। अग्निके सहारे जैसे-तैसे रात्रि काटी। प्रातः पुनः चल दिये।

कालापानीसे काप्‌रा गाम

(आषाढ़ कृष्ण ८, १५ जून)

कालापानीसे चलकर घासामें पाठशालाके सम्मुख उसी स्थानमें मध्याह्न-भोजन करके चल दिये। पहले जिस आधे टूटे पुलको कठिनतासे पार करके आये थे, अब वह पूरा टूट गया। अब तो बहुत बड़े विकट रास्तेसे चलना था। पग-पगपर गिरनेका भय। मीलों नीचे गण्डकी बह रही थी। तरवारकी धारके समान पहाड़की पगडंडीसे चल रहे थे। इस रास्तेसे पुल टूटनेपर ही पहाड़ी यात्री जाते हैं। राम-राम करके काप्‌रा गाँवमें आकर रह गये। बड़ी कठिनाईसे ठहरनेको स्थान मिला। सामान मोल मिल गया। भोजन बना। खाकर सो गये।

काप्‌रेसे तातापानी

(आषाढ़ कृष्ण ९, १६ जून)

प्रातः काप्‌रेसे चले। आज एक बड़ी विकट घटना घट गयी। पहाड़का रास्ता आगे चलकर बाढ़से कट गया था। हमलोग कटे स्थानतक पहुँचे। नीचे २५-२० शिला थी, नीचे गिर जाय तो मर जायँ। पहाड़में तो एक हाथ-भरकी भी बचत हो जाय तो यात्री प्राणकी बाजी लगा देता है। पहाड़ी मना कर रहे थे, किंतु हम माने ही नहीं; लाठीके सहारेसे एकका हाथ पकड़कर कूद गये। भगवान्‌ने ही बचाया। नहीं तो, वहीं गण्डकीमें समाधि हो जाती। केवल कोई समाचार भले ही दे देता।

अब हमें चिन्ता हुई कि पीछेवाले कहीं ऐसा दुस्साहस न कर बैठें। हम एक शिलापर बैठ गये। पीछे पाँच-छः आदमी थे, हम जोरोंसे चिल्लाये—'हे नाथ नारायण वासुदेव, लौट जाओ लौट जाओ।' किंतु पुजारीजी गंगादत्त तथा रामदास शास्त्री, तो कूद आये। शेष सभी लौट गये। भगवान्‌ने लाज रख दी। नहीं तो, उस दिन मृत्यु चार ही अंगुल रह गयी थी। वहाँसे चलकर तातापानी आ गये। वर्षा होनेसे रात्रिमें भी यहीं रह गये।

तातापानीसे गलेश्वर

(आषाढ़ कृष्ण १०, १७ जून)

तातापानीसे आज प्रातः चले। आज बहुत ही कारुणिक दृश्य था। कुछ लोग तातापानीसे पोखरा जाकर वहाँसे हवाई जहाज द्वारा काठमाण्डूमें भगवान् पशुपतिनाथका दर्शन करना चाहते थे। अखण्ड कीर्तनकार, जो १२—१४ नैपाली भक्त थे, उनकी भी विदाई यहींसे थी। उर्मिलाकी बड़ी मौसी रमादेवी, सरस्वती, लाला द्वारकाप्रसाद, उनकी पत्नी—ये लोग सब रोते-रोते विदा हुए। नैपाली सभी भक्त ढाह मार-कर रोते जाते थे। कीर्तन करते जाते थे। उनका आग्रह था, हमें छोड़िये नहीं। प्रयाग, वृन्दावन जहाँ चाहें ले चलिये। किंतु परिस्थिति ऐसी ही थी। वज्रहृदय करके उनको विदा देनी पड़ी। मेरा भी हृदय भरा हुआ था। दृश्य अत्यन्त कारुणिक हो गया था। मैं अपनी लाठी उठाकर चल दिया। वे बेचारे रोते ही रहे। आज हम चलते ही गये, चलते ही गये। बीचमें तिपलिंगमें भोजन करके अत्यन्त भयानक चढ़ाई-उतराई पारकर बहुत रात्रिमें गलेश्वर स्वामी ईश्वरानन्दजी ब्रह्मचारीके आश्रमपर पहुँच गये। ब्रह्मचारीजीने अत्यन्त स्नेहसे हमारा सत्कार किया। बारी-बारीसे जो आता गया, वही भोजन बनाता, खाता गया। रात्रिभर ब्रह्मचारीजीकी कुटियापर ही निवास किया।

गलेश्वरसे सहस्रधारा

(आषाढ़ कृष्ण ११, १८ जून)

अब अधिक वर्णन क्या करें? गलेश्वरसे सहस्रधारा, सहस्रधारासे फलेवासमें निवास। हाँ, फलेवाससे आगे एक पहाड़ीके साथ चले। आगे दो नदियोंका संगम था। नदी बहुत बढ़ गयी थी। किसीका भी साहस नदीको पार करनेका नहीं हुआ। तब एक दूसरे पहाड़पर चढ़कर किनारे-किनारे बहुत-दूर निकलकर किसी बहुत प्राचीन पुराने मार्गसे आये। यदि भगवान्‌के रूपमें वह पहाड़ी न आता तो न जाने हम कहाँ भटकते रहते। फिर श्वेतबैनी वीरघा होते हुए रात्रि ओगहामें एक मन्दिरमें बितायी। प्रातः उठकर जो चले, सो रानीघाट नौकासे पार करके तानसेनमें ही विश्राम किया। तानसेनसे प्रातः उठे और चलते ही गये, चलते ही गये। जो मार्ग आते समय तीन दिनमें तै किया था, उसे आधे ही दिनमें पार कर लिया। दिनके दो बजे

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया (ता० २३ जून) को रथयात्राके दिन बुटवलमें पहुँच गये । मानो देशमें लौट आये ।

—'बोल दे मुक्तिनाथ भगवान्‌की जय ।'

उपसंहार

बुटवलमें हम तो दिनके दो बजे पहुँचे और लोग कोई दो घंटे पश्चात्, कोई चार घंटे पश्चात्, रात्रिके १० बजेतक सभी आ गये । सबको विश्वास था, अब कलसे तो चलना ही न पड़ेगा । अतः पूरा साहस बटोरकर सभी चले आये ।

(आषाढ़ शु० ३, २४ जून)

आज सभी सुखपूर्वक निश्चिन्त होकर प्रगाढ़ निद्रामें सोये । एक ही दिनमें यात्राके सब कष्टोंको भूल गये । गीताप्रेस गोरखपुरसे तार मिलनेपर आदमी खर्च लेकर आ गया था । कुलियोंका चुकता किया । खीरका भण्डारा हुआ । सबने आवश्यक वस्तुएँ खरीदीं । बुटवलसे आगे पहाड़ नहीं हैं । एक महीनेतक पहाड़ोंमें चलते-चलते निरन्तर पहाड़ोंमें बंद रहनेसे पहाड़ोंको ही देखते रहनेसे ऐसा लगता था कि हम पहाड़ोंकी चहारदिवारीकी जेलमें बंद हैं । आज खुला विस्तृत आकाश देखा, मानो जेलसे निकल आये हों । दिनभर बुटवलमें ही रहकर आराम किया ।

दूसरे दिन श्यामप्रकाश, शिवानन्द, कला, उर्मिला, बंशीवाले तथा और भी लोग प्रयागके लिये चले । रामदास शास्त्री, रामलखनदासजी पुजारी, आत्माराम गौतम—ये लोग वृन्दावनके लिये चले । ईश्वरदास तथा और लोग गोरखपुरको । सब लोग गोरखपुरतक साथ गये । हम, रामराज, जगदेव तथा नैपाली चन्द्रमणि—ये चार आदमी भैरवासे पोखरा होते हुए काठमाण्डू नैपाल महाराजसे श्री-मुक्तिनाथ मन्दिरके प्रबन्धके सम्बन्धमें मिलने गये ।

नैपालमें हम श्रीकविप्रसादजी गौतमकी कुञ्जमें ठहरे । स्थान-स्थानपर भक्तोंने कीर्तन-उत्सवके आयोजन किये थे । उनमें सम्मिलित हुए । नैपाल महाराजसे मिलनेकी अनुमति माँगी, उन्होंने तुरंत अनुमति दे दी और बिलकुल एकान्तमें अकेले मिलनेकी इच्छा प्रकट की । मैं अकेला श्रीज्योति-प्रसाद गौतमको साथ लेकर महाराजके महलमें मिला । बहुत भव्य प्रासादमें वे अकेले ही खड़े थे । बड़े प्रेमसे मिले । मैंने लिखित रूपसे श्रीमुक्तिनारायणजीके सम्बन्धमें उन्हें सब बताया और यह भी कहा 'नैपाल-जैसे धार्मिक राजाके राज्यमें इतने बड़े महत्त्वपूर्ण प्रसिद्ध तीर्थकी ऐसी उपेक्षा हो, यह बड़े ही दुःखकी बात है ।' अन्तमें मैंने निम्न सुझाव दिये ।

(१) श्रीमुक्तिनाथके सेवा-प्रबन्धके सम्बन्धमें एक समिति बनायी जाय, उसमें थाकटुकचेके थकाली तथा और भी प्रतिष्ठित लोग रहें । एक सरकारी आदमी रहे । वह मन्दिरकी पूजा आदिकी देख-रेख रक्खे ।

(२) धौलागिरि अञ्चलाधीश (कमिश्नर) के अधीन एक विशेष अधिकारीकी नियुक्ति हो जो पूजा-प्रबन्ध तथा मार्गके सम्बन्धमें देख-रेख करे तथा पदेन समितिका भी सदस्य हो ।

(३) जो लोग सदावर्ती गूँठके गाँवोंके धानको नहीं देते हैं उनसे कानूनके द्वारा कड़ाईसे धान वसूल किया जाय और उसे पूजा तथा सदावर्तके कार्योंमें व्यय किया जाय ।

(४) लाताके आगे नैपाल सरकारका शासन नहींके ही बराबर है । वहाँ न डाकखाने हैं न पुलिस-चौकी । झुमसाके आगे दो पुलिस-चौकी स्थापित की जायँ । जो यात्रियोंको भी लूटपाटसे बचावें तथा विशेष अधिकारीको धानकी उगाहीमें सहयोग दें ।

(५) मार्ग, जहाँ टूटा-फूटा है, उसकी सरकारी तौरसे मरम्मत की जाय ।

(६) जो झूले या पुल टूट गये हैं, उनकी मरम्मत की जाय, उन्हें आधुनिक रूप दिया जाय ।

(७) टूटी हुई धर्मशालाओंकी मरम्मत की जाय, जहाँ पानी नहीं है, वहाँ पाइप लगाकर पानीका प्रबन्ध किया जाय । भारतके धार्मिक लोगोंको नयी धर्मशाला, विश्रामगृह बनानेको प्रोत्साहित किया जाय ।

(८) मार्गमें दूकानोंका प्रबन्ध किया जाय, जिनमें उचित मूल्यपर जीवनोपयोगी सभी सामग्री मिल सकें ।

(९) मार्गमें जहाँ-जहाँ पेड़ उखड़ गये हैं या उनके चबूतरे टूट गये हैं, जहाँ-जहाँ पेड़ नहीं हैं वहाँ नये पेड़ लगाये जायँ और चबूतरोंकी मरम्मत करायी जाय ।

(१०) झुमसाका हवाई अड्डा चालू किया जाय, मुक्तिनाथकी यात्राका भारतमें प्रचार किया जाय । जिससे बद्रीनाथकी भाँति यहाँ भी यात्री प्रतिवर्ष अधिक-से-अधिक संख्यामें आया करें ।

इस प्रकार यदि प्रचार किया जायगा, तो बद्रीनाथकी भाँति यहाँ भी हजारों-लाखों यात्री प्रतिवर्ष जाया करेंगे और मन्दिरको भी लाखों रुपयोंकी आय होगी। पहले बद्रीनाथकी यात्रामें भी लोग ऐसे ही जाते थे। टिहरी महाराजने देवप्रयागी पण्डाओंके द्वारा देशभरमें प्रचार कराया था और सब प्रबन्ध किया था। इससे सैकड़ों यात्री जाने लगे। जब कच्ची सड़क अंग्रेजी कालमें बन गयी तो हजारों यात्री जाने लगे। जबसे मोटर आदिकी सुविधा हुई, चार-पाँच लाख यात्री प्रतिवर्ष जाते हैं और अनुमानतः बद्रीनाथ-मन्दिरको वर्षमें पाँच-छः लाख रुपयेकी आय होती है।

नैपाल महाराजने मेरी सभी बातोंको बड़े धैर्यसे ध्यान-पूर्वक सुना और मुझे आश्वासन दिया कि मैं अपने अधिकारियोंसे इस सम्बन्धमें सलाह करूँगा और जो कर सकूँगा, अवश्य करूँगा तथा आपको भी इसकी सूचना दिलाऊँगा। मैंने यह भी कहा—यदि महाराज हमारे लिये छोटे वायुयान (हेलीकाप्टर) का झुमसातक विशेष प्रबन्ध कर दें तो एक बार इसी वर्ष दशहरेपर फिर मेरी इच्छा मुक्तिनाथ जानेकी है। महाराजने कहा—इसकी भी मैं सूचना आपको दूँगा।

अभीतक तो मुझे नैपाल-राज्यकी ओरसे कोई सूचना मिली नहीं कि श्रीमुक्तिनाथकी पूजा-अर्चाके प्रबन्धके सम्बन्धमें राज्यने क्या किया। मेरी महाराजासे पुनः प्रार्थना है, इस आवश्यक प्रश्नपर विशेष ध्यान दे करके इस महाधामकी उसकी प्रतिष्ठाके अनुरूप पूजा-अर्चाकी समिति बनाकर उसी प्रकार व्यवस्था कर दें जैसी कि श्रीपशुपतिनाथजीके मन्दिरमें है।

नैपालसे दो दिन प्रयत्न करनेपर भी मौसमकी खराबीसे हमें हवाईजहाज नहीं मिल सका। अन्तमें हमने हवाईजहाज-की टिकटें वापिस कीं और मोटरद्वारा रक्सौल आये। वहाँसे पटना होते हुए आषाढ़ शुक्ला द्वादशीको झूसी आ गये। इस प्रकार हमारी यह श्रीमुक्तिनाथकी यात्रा समाप्त हुई।

छप्पय

मुक्तिनाथ भगवान दासको बन्ध छुड़ाओ।
भटकि रहे भव माहिं दया करि पार लगाओ॥
आसा त्रिस्ना लगीं भूतिनी पीछे तनके।
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर अरि जनके॥
प्रभो! छुटाओ सबनि तैं, करो बिलम्ब न नाथ अब।
जब होवे क्षय मोहको, मुक्तिनाथ सचु नाम तब॥

बवंडर—सूखे तिनके

(रचयिता—प्रो० श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण')

बछड़ों की चिन्ता में
आस्था की गायें रँभ रही हैं।
भीतरी उफान बरसाती कुकुरमुत्तों की तरह
उठती चली आ रही है।

पत्थर या अवरोधक के बिना भी
आवाजें टकराकर लौट रही हैं।
समानान्तर पटरियों पर
चिग्घाड़ती हुई रेल बढ़ रही है,
लदा हुआ बोझ कुछ रुकावट भी डालता है,
पर कुंठित विवेक सर नहीं उठाता॥

अजब संयोग यह
कहीं व्यवधान नहीं,
लाल सिगनल नहीं,
मरम्मत होती हुई पटरियों के सामने की
लाल झंडी टूटकर गिर गयी हो जैसे॥

भैंसों की उछलन
और चरवाहों की कातर पुकार,
और सूअरी का चिल्लाना,
रह-रहकर दर्द उठा देता है॥

सिराएँ ऐंठ जाती हैं?
उजाले में रोशनी की जरूरत क्या?
सत्ता के उन्माद का कोई उपचार नहीं।
रोड़ों की टक्कर से आग निकल जाती है॥

झरबेरी के बेर
धूप या कि छाया में सीझते हैं।
बकरियाँ छटपटाती हैं
बढ़ी हुई घासों को चरने को,
चुभते हुए काँटे उन्हें रोक नहीं पाते हैं॥

बवंडर की चपेटमें
सूखे हुए तिनके ही आते क्या?
पत्थर के टुकड़े तो निर्भय-से रहते हैं
शंका की तितलियाँ भी उड़ कर चल जाती हैं।
कौन-सा कारण है
कि रजनीगंधा दिनमें गमकती नहीं॥

मधुर

नित्य-अनन्त-अचिन्त्य परम प्रेममयी श्रीराधाजी परम प्रियतम श्यामसुन्दरके वियोगमें अत्यन्त विषण्ण रहती थीं। एक दिन कहींसे बड़े सुन्दर स्वरमें परम मधुरातिमधुर 'श्याम' नाम सुनायी दिया। वह श्याम नाम श्रीराधाके श्रवणरन्ध्रोंमें प्रवेश करके हृदयमें पहुँच गया और वे उस 'श्याम' नामका अवलम्बन लेकर विषम वियोगकी स्थितिको बिताने लगीं। पर बीच-बीचमें उनका हृदय तथा नेत्र-मधुकर श्याममुख-सरोज-रस-पानके लिये व्याकुल हो उठते थे। उसी व्याकुलतामें एक दिन बड़ी ही सुन्दर घटना घटी। उसीका वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

जबसे सुना सुधामय सुन्दर
'श्याम' नाम अतिशय सुखधाम।
हुए मुग्ध मन-बुद्धि-प्राण सब
चलने लगा नाम अविराम॥
नाम-माधुरीने प्राणोंमें
कर दी जाग्रत् दर्शन-प्यास।
हुआ चित्त उत्कंठित आकुल
चला सुतप्त दीर्घ निश्वास॥

श्रीमती राधिकाजीने जबसे सुधामय सुन्दर आत्यन्तिक सुखधाम श्रीश्याम नाम सुना, तभीसे उनके मन-बुद्धि-प्राण मुग्ध हो रहे हैं और 'नाम' का रटन बिना विराम लगातार चलने लगा है। परंतु श्याम नामके माधुर्यने सहज ही चित्तमें श्यामसुन्दरके दर्शनकी पिपासा जाग्रत् कर दी। इससे श्यामदर्शनके लिये चित्तमें उत्कण्ठा उत्पन्न हो गयी। चित्त व्याकुल हो गया और श्रीराधाजीके गरम-गरम लम्बा श्वास चलने लगा।

स्नेहमयी शुचि सखी विशाखा
देख राधिकाको बेहाल।
चित्रकला-निपुणा, अंकित कर
लाई श्याम-चित्र तत्काल॥

निरख चित्र अति मधुर मनोहर
नख-शिख रूप परम रमणीय।
मानो मिले मदन-मद-हर मन-
मोहन प्राणकान्त कमनीय॥
हुई हर्षविह्वल विस्मित-मन
करने लगी गभीर विचार।
नहीं त्रिकाल—तीन लोकोंमें
ऐसा दिव्य रूप रस-सार॥

श्रीराधाको इस प्रकारकी बुरी स्थितिमें देखकर उनकी पवित्र स्नेहमयी सखी विशाखाको बड़ी मनोवेदना हुई, वे चित्रकलामें अत्यन्त निपुण थीं। श्रीराधा अभी श्यामसुन्दरके दर्शन करना चाहती हैं, अतः वे उसी समय श्यामसुन्दरका एक सुन्दर चित्र अङ्कित करके उनके पास ले आयीं। श्रीराधाको उस चित्रमें श्यामसुन्दरका मधुर मनोहर नखसे शिखातक परम रमणीय रूप देखकर बड़ा ही सुख मिला, मानो मदन-मदका हरण करनेवाले मनमोहन परम कमनीय प्राणवल्लभ श्रीश्यामसुन्दर ही उन्हें मिल गये। वे हर्षविह्वल हो गयीं। फिर विस्मित-हृदयसे गम्भीर विचार करने लगीं—तीन काल तीनों लोकोंमें ऐसा दिव्य रस-सार रूप और कहीं है ही नहीं।

जिसके क्षुद्र एक कणको ले
सुमनोंका सारा संसार।
सबको सुख दे रहा अमित, कर
रूप-माधुरीका विस्तार॥
जिसके कोटि अंशका लेकर
एक अंश शुचि नीलाकाश।
विश्व विमोहित करता विधुमुख
भरकर रूप-सुधामय हास॥
जिसकी एक बूँद-सुषमासे
प्रकृति-सुन्दरी कर शृंगार।
अगणित विश्व सजाती रहती
संतत विविध विचित्र प्रकार॥

अतल रूप-सागर जिसमें नित
उठती अतुल अनन्त तरंग।
है न्यौछावर जिसके एक एक
कणपर नित अमित अनंग॥

जिसके एक क्षुद्र-से कणको लेकर समस्त पुष्प-जगत् अपनी रूपमाधुरीका विस्तार करके सबको अपरिमित सुख दे रहा है, जिसके करोड़वें अंशका एक अंश लेकर पवित्र नील गगनमें चन्द्रमा अपने मुख-किरणोंमें रूप-सुधाकी मधुर हँसी भर समस्त विश्वको विमोहित कर रहा है और जिस सुषमा-समुद्रकी एक बूँद सुषमा लेकर प्रकृति-सुन्दरी अपना शृङ्गार करती है और असंख्य विश्व-ब्रह्माण्डोंको निरन्तर विविध विचित्र प्रकारोंसे सजाती रहती है। जो रूपसौन्दर्यका अतल समुद्र है और जिसमें अनन्त अतुलनीय सौन्दर्य-तरङ्गें उठती रहती हैं, जिसके एक-एक कणपर नित्य अपरिमित कामदेव न्योछावर हैं।

कैसे किया सुअंकित उसको
लघुतम पटपर सखिने आज?
कैसे एक एक अवयवपर
सजा सकी वह सुन्दर साज?॥
कैसे द्रवित न हृदय हो गया?
कैसे रहा धैर्यका बन्ध?
कैसे खसी न हस्ततूलिका
पाकर श्याम-रूप-संबन्ध?॥
कैसे क्षुद्र तूलिकामें वह
आया रूप-समुद्र महान?
मन अतीत नित बुद्धि अगोचर
कैसे उसे सकी सखि जान?॥

उस विशाल रूपराशिको छोटेसे पटपर सखी विशाखाने आज कैसे अंकित कर दिया? कैसे वह एक-एक अङ्ग-अवयवको सुन्दर शृङ्गार-द्रव्योंसे सजा सकी? उन अङ्गोंकी मोहिनीको देखकर कैसे उसका हृदय द्रवित नहीं हो गया और कैसे उसके धैर्यका बाँध सुरक्षित रहा—टूट न गया? श्याम-रूपका सम्बन्ध प्राप्त करके भी कैसे उसके हाथकी तूलिका खिसक न गयी? एवं कैसे मेरी वह सखी उस मनसे अतीत, बुद्धिसे अगोचर प्रियतम श्यामसुन्दरको जान सकी?

जाग उठी सुस्मृति, उर अन्तर
लगा दीखने रूप ललाम।
जो चिर अंकित था, अब प्रकटी
पूर्ण मिलन-इच्छा अभिराम॥
पर, न हो सकी पूर्ण सदिच्छा,
अमित यन्त्रणा बढ़ी तुरंत।
बड़वानल अति विषम जल उठा,
उठी हृदयमें हूक दुरंत॥
हुआ युगों-सा एक एक पल
रहा न रंचक धैर्य-विवेक।
सूखा हृदय, अश्रु-दृग सूखे,
एकमात्र प्रिय दर्शन-टेक॥

यों विचार करते-करते ही श्रीराधाके हृदयमें पुरानी सुन्दर स्मृति जाग उठी। उन्हें अपने हृदयमें चिरकालसे अङ्कित श्याम-रूपके ललित दर्शन होने लगे। ऐसा होते ही अब पूर्ण मिलनकी मनोहर इच्छाका उदय हो गया। पर प्रत्यक्ष मिलनके अभावमें उस सदिच्छाकी जब पूर्ति नहीं हुई, तब उनकी हृदय-यन्त्रणा असीम रूपमें बढ़ गयी। हृदय-रस-समुद्रमें भयङ्कर अग्नि जल उठी, हृदयमें प्रचण्ड पीड़ा उठ खड़ी हुई। एक-एक पल युगोंके समान हो गया, तनिक भी धैर्य और विवेक नहीं रहा। हृदयकी आगने हृदयके तमाम रसको सुखा दिया। आँखोंके आँसू भी सूख गये। एकमात्र प्रियतम-के दर्शनकी टेक रह गयी।

सहसा प्रकट हो गये प्रियतम
अनुपम मधुर लिये मुसुकान।
चकित प्रहर्षित लगी देखने,
उमड़ा सुख-समुद्र निर्मान॥

इतनेहीमें अकस्मात् प्रियतम श्यामसुन्दर प्रकट हो गये। उनके मुखपर अनुपमेय मधुर मुसकान खेल रही थी। राधाजी आश्चर्यचकित हुई अत्यन्त हर्षके साथ उनकी ओर देखने लगी। अपरिमाण सुखका सागर उमड़ पड़ा!

समय बीतने दीजिये, आपके दुःख स्वयं दूर होंगे

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, मानसशास्त्री, दर्शनकेसरी)

आज आप बेहद दुखी हैं और समझते हैं कि हमारा यह दुःख कभी कम न होगा। हमें सदा-सर्वदाके लिये तोड़-फोड़कर रख देगा।

विषम-से-विषम समस्या शायद आज ही आ गयी है। हम इसके साथ ही नष्ट हो जायँगे। संसार-सागरके थपेड़े हमें सदाके लिये चूर-चूर कर देंगे।

हमारे प्रिय बन्धु-बान्धवोंकी मृत्यु हो गयी है। हम आठ-आठ आँसू रो रहे हैं। हमें कल नहीं पड़ रही है। लोग रोकते हैं, पर हम मरनेको तुले बैठे हैं।

एक महाशयको व्यापारमें बड़ा नुकसान रहा है। वे दुःखसे व्याकुल होकर बड़े ही कारुणिक स्वरमें कह रहे हैं, 'हे ईश्वर! मुझे उठा ले। कैसी आत्म-सम्मानको चोट लगी है। मैं पापी हूँ, नीच हूँ जो मेरी दुर्दशाको भगवान् भी देखकर दया नहीं करता। अब कौन दिन होगा कि प्रभु मेरे नुकसानकी पूर्ति करेंगे। मुझे थोड़ा-सा चैन तो मिलेगा। अब क्या करूँ? इतना आवेश आ रहा है कि जीवनका अन्त कर दुःखोंसे छुटकारा पा लूँ। कर्जदारीने मुझे खा रक्खा है। हे प्रभु! मुझे अब न रुला। मेरे आँसू न देख प्रभु!'

एक सज्जन अपनी नौकरी छूटनेसे परेशान हैं। उनका न तो कोई निकट सम्बन्धी है, न मकान, जहाँ वे रहकर नौकरी ढूँढ़ सकें। होटलमें नौकर थे और वहीं रहते थे। नौकरीसे अलग हो भूखे चिन्तित हो रहे हैं। कहते हैं—'हे ईश्वर! अब क्या होगा। मुझे तथा मेरे बच्चोंको भोजन कहाँसे मिलेगा। मैं क्या करूँ? किससे अपने मनकी व्यथा कहूँ।'

सास-बहूकी तनातनी सभीको विदित है, पर दुःखके एक झटकेसे भावुक बहू इतनी उद्विग्न हो उठती है कि जीवनका क्षणभरमें अन्त हो जाता है। पति-पत्नीकी, मालिक-नौकरकी और पूँजीपति-मजदूरोंकी खटपट चलती ही रहती है।

इस प्रकारके एक नहीं, सैकड़ों दुःख हैं। हम अपनी वेदनामें डूबे हैं और समझते हैं कि हमारे दुःखोंका अन्त नहीं होगा। हमारा सारा जीवन इसी प्रकार विपत्तियोंमें गुजरेगा।

दुःखसे छूटनेकी अचूक दवा

दुःखके कारणोंको जान लेना चाहिये—

तृष्णार्तिप्रभवं दुःखम्। (शा० प० २५। २२)

तृष्णाकी पीड़ा ही दुःखका भारी कारण है। तृष्णाको तुरंत त्याग दीजिये।

दुःखं चानिष्टसंवासः। (शा० प० १३९। ६४)

अर्थात् अप्रिय अर्थात् बुरे संगसे दुःख होता है। अतः सत्संग करना चाहिये। अच्छे व्यक्तियों तथा पवित्र विचारों, आशावादी विचारोंमें रमण करनेसे लाभ होता है।

अपध्वस्तस्त्ववमतो दुःखं जीवति जीवितम्।
(शा० प० १२३। २०)

अर्थात् तिरस्कृत और अपमानित जितने समय जीता है, दुखी ही जीता है। ऐसे बुरे कार्य (चोरी, निन्दा, हिंसा, मद्यपान, व्यभिचार, मांसभक्षण, रिश्वत) नहीं करने चाहिये कि व्यर्थ ही तिरस्कृत होना पड़े।

दुःखमिष्टवियोजनम्। (शा० प० १३९। ६४)

अर्थात् प्रियका अलग हो जाना दुःखका कारण होता है। हम सबको एक दूसरेसे कभी-न-कभी बिछुड़ना ही है। कोई देर कोई सबेर सभी विलग होनेवाले हैं। अतः इसमें कोई दुःख न मनाकर मनको संतुलित रखना चाहिये।

नास्ति रागसमं दुःखम्। (शा० प० १७५। ३५)

अर्थात् विषयोंमें आसक्ति, सांसारिक भोग-पदार्थोंमें आकर्षण दुःखका प्रधान कारण होता है। त्याग-सरीखा दूसरा कोई सुख नहीं है। अनासक्ति ही कल्याणका मूल कारण है।

प्रसृतैरिन्द्रियैर्दुःखी। (शा० प० २१०। १०)

अर्थात् इन्द्रियोंके क्षुद्र विषयोंमें फँसे रहनेसे मनुष्य दुखी रहता है। इन्द्रियोंके आकर्षणसे बचना, अपने विकारों-

को संयमद्वारा वशमें रखना, अपनी आवश्यकताओंको कम करना दुःखसे बचनेका उपाय है ।

सुखं दुःखान्तमालस्यम् । (शा० प० १७३ । ४०)

अर्थात् आलस्य करते हुए बाहरसे सुख मिलता हुआ तो दीखता है, पर वह अन्तमें हमेशा दुःखका ही कारण बनता है । इसलिये सदैव कर्मरत रहना चाहिये । अपनी पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारियोंको आलस्य त्यागकर पूर्ण करते रहना चाहिये ।

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
(शा० प० २०३ । २)

अर्थात् दुःखकी यही अचूक दवा है कि मनुष्य दुःखका कदापि चिन्तन न करे अर्थात् दुःखमें व्याकुल-विह्वल न हो । उसे धैर्यपूर्वक दूर करनेका प्रयत्न करे ।

दुःखान्तप्रभवं सुखम् । (शा० प० २५ । २५)

स्मरण रखिये, दुःखके बाद सुख आया ही करते हैं । ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई आदमी या परिवार सदा दुखी-ही-दुखी रहे । धैर्य धारण कीजिये ! सब्र कीजिये आपके दुःख स्वयं दूर होनेवाले हैं । इसलिये—

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाप्रियम् ।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः ॥
—व्यास

अर्थात् सुख हो या दुःख हो, प्रिय हो या अप्रिय हो, जब-जब आये, तब-तब अपराजित हृदयसे ही उसका सामना करना चाहिये । समयके बीतनेके साथ खुद ही दुःख कम होते जाते हैं ।

समयका ओषधिरूप

आजके युगमें नाना प्रकारकी ओषधियोंका आविष्कार हो रहा है । डाक्टर लोग नित नये-नये इन्जेक्शनों और दवाइयोंके प्रयोगोंसे लोगोंको भला-चंगा स्वस्थ कर रहे हैं । बड़े-बड़े डाक्टर दवाइयोंके निर्माणमें रात-दिन प्रयोगशालाओंमें लगे हुए हैं । शहरोंमें दवाइयोंके स्टोरोंकी भरमार है । डाक्टर, हकीम और वैद्योंकी आमदनी दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है ।

किंतु एक ओषधि ऐसी है, जो पुराने युगसे आजतक वैसी ही अचूक और चमत्कारिणी बनी हुई है ।

हम उस ओषधिको जानते नहीं किंतु प्रयोग अवश्य करते हैं और लाभ उठाते हैं । यदि ईश्वरकी दी हुई यह दवा न होती, तो मनुष्यका जीवन दूभर हो जाता और वह क्रोध, द्वेष, आवेश या विक्षोभके मानसिक आघातके एक झटकेमें ही मर जाता । उस ओषधिका नाम सुनकर आप आश्चर्य करेंगे ।

यह है—'समय' ।

समय और सो भी एक ओषधि ! आप आश्चर्यमें डूबे हुए हैं । पर बात ठीक है । समय एक प्रवाह है । एक शान्तिदायक विस्मृतिमूलक निर्झर है ।

समयकी गति तीव्र है । इसकी गतिसे मनुष्यके बड़े-बड़े दुःख, क्षोभ, चिन्ताएँ स्वतः दूर होती हैं । बड़े-बड़े घाव भरते हैं । ज्यों-ज्यों शोकादि, दुःख, मृत्युके क्लेश अधिक दिन बीतनेपर पुराने होते जाते हैं, त्यों-त्यों मन और शरीरपर उनका प्रभाव कम होता जाता है और कालान्तरमें एक समय ऐसा आता है, जब वे कटु दर्दनाक बातें, वे भयावह घटनाएँ, बड़ी-बड़ी मौतें, मानहानि, घबरा देनेवाली स्मृतियाँ, कुटुम्बोंमें रहनेवाले द्वेष, विरोधियोंमें चलनेवाले संघर्ष बिल्कुल भुला दिये जाते हैं ।

समयके चक्रके गुजरनेके साथ बड़ी-बड़ी खाइयाँ पट जाती हैं । वक्त कटनेके साथ कुटुम्बोंमें रहनेवाली कटुताएँ दूर हो जाती हैं । समयका प्रवाह शान्तिदायक है । मृदु-मरहम जैसा है । झगड़ोंके अन्धकारपर इन्द्रधनुषीरंग छिटक जाते हैं ।

समय बीतनेपर मनके स्मृतिपटलपर बने कटुता, द्वेष, तनाव और खण्डित अहंके स्थानपर फिर नयी दूब उग उठती है । आशाकी तितली चमकने लगती है । हम जिस दुर्घटना या मृत्युको असह्य और घातक समझते हैं, वही न जाने विस्मृतिके गर्भके कहाँ, किस कोनेमें विलीन हो जाती है ।

समयके प्रवाहसे मनका क्लेश कम होता है, ऊहापोह और चित्तकी चञ्चलता दूर हो जाती है । बड़ी-बड़ी कुण्ठाएँ अदृश्य हो जाती हैं और जीवनके नये-नये अनुभवोंको सम्हालनेके योग्य आत्मशक्ति आ जाती है ।

आवेश एक प्रकारके तूफान हैं

क्रोध और क्षोभ एक प्रकारके तूफान हैं । ये हमारे जीवनमें बड़े झोंकोंके रूपमें आते हैं । उस समय मानसिक

क्षोभका आघात इतना अधिक होता है कि यदि समय न बीते, तो आदमी आत्महत्या ही कर डाले, दूसरेका वध कर दे, आँखें फोड़ डाले, नाक काट ले या किसीको पंगु ही कर दे।

लेकिन यदि कोई व्यक्ति तनिक ठहर जाय और कुछ समय गुजर जाने दे, तो उसमें उस संकटको झेलनेकी गुप्त आत्मशक्ति आ जाती है। समय बीतनेसे मानसिक संतुलन ठीक होने लगता है। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता है, मानसिक संतुलन ठीक होता जाता है। कुछ दिनों बाद मनमें मानसिक आघात सम्हालनेकी पूरी ताकत आ जाती है।

समय एक स्वच्छ प्रवाह है। बहता हुआ पानी स्वास्थ्यका सूचक है। जैसे नदीकी धारा लगातार बहती रहती है और आसपासकी भूमि तथा जलके ऊपरी भागकी गंदगीकी सफाई करती रहती है, इसी प्रकार समयकी धारा मनुष्यके मनको स्वास्थ्य और संतुलन प्रदान देती रहती है। गँदला पानी दूर होकर फिर स्वच्छता आ जाती है, जलमें चाँदी-जैसी धवलता एक बार फिर दिखायी देने लगती है।

समयकी निरन्तर गतिको देखकर ठीक ही कहा है—

सदा न बाग' बुलबुल बोलें,
　　सदा न बाग बहारें।
सदा न राजे राज करिन्दे,
　　सदा न महफिल यारें॥

याद रखिये, बागमें सदा बुलबुल नहीं बोलती। दुःख और कष्टोंके दिन भी आते हैं, पतझड़ भी आता है। मौसम निरन्तर बदलता है। खुश्कीके बाद हरियाली आती है। वर्षाके साथ चारों ओर हरियाली छा जाती है। बागकी बहार सदा एक-सी नहीं रहती। कभी बहार यौवनपर होती है, तो कभी उतार भी आता है। बड़े-से-बड़े राजाओंके राजतक एक-से नहीं रहते, बदलते रहते हैं। मित्रोंकी महफिलें भी सदा स्थिर नहीं रहतीं। समयकी गति निरन्तर अविच्छिन्न है। सतत परिवर्तन ही इस जगत् और जीवनका नियम है।

याद रखिये, समय एक ओषधिरूप है। बड़े-बड़े घाव समयकी गतिसे भर जाते हैं।

आपको याद है जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अयोध्याको छोड़ अपनी धर्मपत्नी और भाई श्रीलक्ष्मणके साथ वन जा रहे थे, तब उनकी माताएँ कारुणिक विलाप कर रही थीं। राजा दशरथका बुरा हाल था। वे सोच रहे थे, श्रीरामके बिना जीवन कैसे चलेगा ? सब प्रजाजन श्रीरामसे बहुत प्रेम करते थे।

धीरे-धीरे उनके वनगमनका समय समीप आया। वल्कल-वस्त्र धारणकर वे वनकी ओर चले। वियोगके मानसिक आघातसे राजा दशरथ पछाड़ें खाकर गिर पड़े। चारों दिशाएँ विरह-वेदनासे विह्वल चीत्कार कर उठीं।

माताएँ रोने लगीं। अयोध्याके प्रजाजन भी पागल-से प्रभुके साथ-साथ चलने लगे। भक्ति, प्रेम और करुणासे सने वे बहुत दूरतक इसी प्रकार चलते गये। नगर खाली हो गया। अन्तमें बड़ी कठिनतासे वे लौटकर आये। सबपर वियोगका आघात बड़ा गहरा था।

किंतु समय बड़ी ओषधि है। धीरे-धीरे समय बीता, कार्य फिर चलने लगे। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे। समयकी गतिने घाव भर दिये। दशरथ तो वियोगमें चल बसे, पर माताएँ मानसिक आघातको सहन कर गयीं। वे चौदह वर्षोंतक जीवित रामके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहीं। समयकी गतिने सबके घाव भर दिये।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण जब गोकुलसे मथुरा गये, तब गोपियाँ विरहमें व्याकुल हो उठीं। उनके मानसिक कष्टोंका क्या ठिकाना था। गोपियोंके विरहका वर्णन करनेमें महाकवि सूरकी स्याही आजतक नहीं सूखी है। वह अश्रुधारा आज भी ज्यों-की-त्यों बह रही है।

लेकिन कालके प्रवाहमें वह दुःख बह गया। समय चला जाता है। यह किसीके लिये नहीं रुकता। रुकना उसका स्वभाव नहीं है। अच्छा हो, या बुरा, समयकी सरिता अविराम, अविच्छिन्न चलती ही जाती है। यह लाभदायक भी है। यदि समयके साथ हम कष्टों, दुःखों, व्यापारिक हानियोंको न भूलें, तो आधी दुनिया मानसिक आघातसे नष्ट हो जाय।

अथर्ववेदकी इस सूक्तिमें मनको शान्त और हृदयको सान्त्वना देनेकी बड़ी शक्ति भरी हुई है—

मा गतानामा दीधीथाः।　　(८।१।८)

अर्थात् गुजरे हुओंके लिये कदापि दुःख-शोक मत करो। इस संसारकी सब वस्तुएँ समयके मुखमें हैं। जो अवश्यम्भावी है, जिसे तुम नहीं रोक सकते, उसके लिये भला रोना क्या ?

ईश्वरकी दी हुई सबसे मूल्यवान् शक्ति यह है

ईश्वरने मनुष्यको दुःखोंसे छुटकारेके लिये जो शक्तियाँ दी हैं, उनमेंसे कष्टोंको भूलनेकी शक्ति बड़ी मूल्यवान् है। समय बीतनेपर दुःख स्वयं ही दूर हो जाते हैं। मनका क्लेश वक्त बीतनेपर खुद हलका होने लगता है।

एक समय होता है। विशेषतः बचपन और यौवनमें। जब यह जो करता है कि जो कुछ एक बार पढ़ लिया जाय, या सीख लिया जाय, सुन लिया जाय, वह हमेशा याद रहे। हमारी स्मरणशक्ति कभी कम न हो।

पर जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती है और कटु प्रसंग आते हैं, तो यह अनुभव होता जाता है कि विस्मरणशक्ति अर्थात् भूलनेकी शक्ति स्मरणशक्तिसे अधिक मूल्यवान् है। यदि सभी कटु, दर्दनाक, मृत्यु या हानिकी बातें मनुष्यको याद रह जायँ, तो उसका मस्तिष्क कूड़े, करकट, काँटों और झाड़-झंखाड़से भर जायगा। मनुष्यके जीवनमें नित्य ही ऐसी बातें गुजरती हैं, जिनसे हृदयको बड़ा आघात पहुँचता है। उनमेंसे थोड़ी-सी भी बातें अगर हमेशा याद आती रहें, तो उसका समस्त भावी जीवन शूलमय, कण्टकपूर्ण और वेदनामय हो जाय।

इसलिये जब निकट सम्पर्कमें रहनेवाले सगे-सम्बन्धी मित्र स्वर्गवासी हो जायँ, तो धीरे-धीरे उनकी याद भी भूल जाना जरूरी है। उन्हें भूलकर ही मनुष्य सुखी और स्वस्थ जीवन बिता सकता है। ईश्वरकी यह बड़ी भारी देन है।

मनको शीतल होने दीजिये

यदि आप किसी आकस्मिक दुर्घटना, मृत्यु, शोक, हानि, चिन्ता, कलह या और किसी भयंकर कष्टसे पीड़ित हैं, तो जल्दी आवेशमें कोई काम मत कर बैठिये। मनको शान्त, शीतल और संतुलित होने दीजिये। ठंडे मनसे विचार करनेपर बुद्धि निर्विकार हो जाती है। आवेश, चिन्ता और उद्वेग मस्तिष्कको पंगु कर देनेवाले विकार हैं।

कानूनमें फैसला तुरंत ही नहीं हो जाता, वरं सबूत इकट्ठा करनेमें महीनों और वर्षों लग जाते हैं। दोनों पक्ष समयकी रफ्तारसे ठंडे पड़ जाते हैं। समयकी इस गतिसे आवेशमें होनेवाले बहुत-से झगड़े-टंटे स्वतः शान्त हो जाते हैं। लड़ने-झगड़नेवाले दोनों पक्ष अपनी भूलका अनुभव कर लेते हैं और अनेक बार तो समझौता स्वतः हो जाता है। कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय करनेसे पूर्व कुछ समय अवश्य व्यतीत हो जाने दीजिये। ऐसा करनेसे आवेशका तूफान बुद्धि और निर्णयशक्तिको मन्द नहीं होने देगा।

आप निराश कदापि न हों

आपके जीवनमें ऐसे-ऐसे संकट आयेंगे कि ऐसा प्रतीत होगा मानो अन्त निकट आ गया है, बचनेका कोई मार्ग ही नहीं है। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दिखायी देगा। प्रकाशकी एक क्षीण रेखातक नजर न आयेगी।

फिर भी आप निराश न हों। हिम्मत न हारें। समय बीतने दें। बस, कुछ दिन ठहर जायँ। विस्मरण वह मृदु मरहम है, जो आपके जख्मोंपर दवाका काम देगा और आपको पूर्ण स्वस्थ कर देगा। समय बीतनेपर आप अपने कष्टों और विपत्तियोंको खुद ही भूल जायँगे।

समय सर्वोपरि है। वह हमें वे शक्तियाँ देता है, जिनसे हमारे मनका भार हलका हो जाता है। अंदरके दुर्भाव खुद दूर हो जाते हैं।

फारसके एक राजाने अपनी अंगूठीपर ये शब्द खुदवाये थे—

'यह स्थिति भी नहीं रहेगी।'

अर्थात् अच्छी स्थिति आयेगी। समय सदा एक-सा नहीं रहता। गति ही जीवनका लक्षण है। हम न किसी विषम स्थितिसे चिन्तित हों, न तनिक-से लाभसे फूल उठें। अच्छी या बुरी जैसी स्थिति हो हम धैर्यसे समयको बीतने दें। समय आयेगा जब हमारी विषम-से-विषम स्थिति अच्छाईमें बदलेगी।

मुक्ति जो बन्धन बने, उस मुक्तिको ले क्या करूँगा ?

प्राचीन बनाम आधुनिक नारी

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

राजनीति एवं समाज-सुधारके क्षेत्रमें कभी मैंने कुछ काम किया था; इसलिये बहुत-से कृपालु मित्र जब-तब मुझसे कहते और लिखते रहते हैं कि तुम्हारा वह यौवनोन्मेष आज चला गया है; तुम्हारी वाणी अब क्रान्तिके गान नहीं गाती; अब तुम नारीको मुक्तिका संदेश नहीं देते, दकियानूसी टाइपकी बातें करते हो। यह तुम्हें हो क्या गया है ?

मैंने बहुत विचार किया है, एकान्तमें शान्त चित्तसे विचार किया है किंतु मैं निर्णय नहीं कर पाया कि 'कुछ हो' उन्हें गया है या मुझे। क्रान्तिके गान तो मैं आज भी गाता हूँ; नारीको मुक्तिका संदेश भी देता हूँ किंतु पहले जहाँ वह क्रान्ति रूपगत थी, अब आत्मगत, अन्तर्गत हो गयी है; और मुक्ति जो केवल शरीर-स्वच्छन्दताकी मुक्ति थी, अब वास्तविक मुक्ति हो गयी है;—एक मायाविनी, ऐन्द्रजालिक, मोहकारिणी, कृत्रिम, **'विषकुंभं पयोमुखं'**, ऊपरसे आकर्षण-मयी परंतु अंदरसे सड़ी और घिनौनी सभ्यताके मायाजालसे मुक्ति; अन्तरका शोधन करनेवाली और भीतरसे भी सुन्दर बनानेवाली मुक्ति।

नारीको मैं समस्त मानव-सभ्यताकी कुंजी मानता हूँ; वही है उसकी प्रेरक शक्ति; वही है उसकी संस्थिति एवं विकासकारिणी देवी। भारतके लिये तो यह और भी सत्य है; क्योंकि समस्त भारतीय संस्कृति मातृबोधकी संस्कृति है। मातृत्वसे ही हमने अपने समस्त संस्कार ग्रहण किये हैं—पशुमें देवताके आविर्भावका संस्कार, समर्पणका संस्कार, शाश्वत दानका संस्कार। इसीलिये मुझे अपनी बहिनों एवं बेटियोंका इतना लाड़ है। मैं उन्हें गौरवके स्तम्भसे गिरते देख रो देता हूँ। भाईको गिरते देख क्रोध आता है; बहिन-को गिरते देख रोना आता है। यह मेरी विवशता है।

शुरूसे मैं कहता रहा हूँ कि नारीके पाँवकी बेड़ियाँ काट दो, उन्हें अपनेमें विकसित होने दो; अपनेमें जगने दो। परंतु आज मेरा स्वर भीड़से कुछ अलग पड़ गया है। मैं देखता हूँ कि आज जो लोग आधुनिकताके नामपर नारीकी मुक्तिका गान गाते हैं वे सबसे ज्यादा नारीसे चिपटकर उसका बोझ बढ़ाये हुए हैं और उसे चलने नहीं देते। वे उसकी स्वाभाविक मुक्ति नहीं चाहते, उसे अपने मार्गपर चलनेमात्रके लिये स्वतन्त्रता चाहते हैं। और मैं देखता हूँ कि जो नारी पुरुषकी परतन्त्रतासे मुक्त होनेका जितना ही बड़ा नारा लगाती है, वह उनके चंगुलमें उतनी ही फँसी हुई है, वह उतनी ही विवशा है—यह अलग बात है कि 'क'से मुक्ति पाकर 'ख' के बन्धनमें जा पड़ी हो। शिक्षित समाजमें यह स्थिति विशेष है। आधुनिक नारी अधिक शरीरधर्मी होनेके कारण शरीर-सुखकी अधिक सुविधाओंके लोभमें अपनेको अधिकाधिक शृङ्गारप्रिय, अधिकाधिक आकर्षक, पुरुषके लिये मोहिनी बननेकी चेष्टाके कारण उसके प्रशंसा-वाक्योंकी भूखी, उसकी कृपादृष्टिकी प्यासी, उसके आलम्बन-के लिये कहीं अधिक आतुर और फलतः दिन-दिन उसकी अधिक दासी होती जाती है।

हमने उसे उस पुरातन दाम्पत्यसे बाहर निकालनेका बीड़ा उठाया, जिसमें वह अपने परिवारकी समृद्धिमें अपनेको खो देती थी; अपने पति, संतति, सास-ससुर तथा अन्य स्वजनोंकी सेवामें उसका समय जाता था और एक छोटा-सा समाजवादी समाज उसके आँचल-तले पनप उठता था—वह जो एक-दूसरेके लिये दृढ़ ममत्वके बन्धनमें बँधा था; वह नारी जो सास-ससुर, पति, संततिको पहले खिलाकर खाती थी, उनकी प्रसन्नतासे प्रसन्न होती थी। वह नारी जो कुछ दे सकती थी—दूसरोंको भी, अपनेको भी—वह अपनेको देकर, अपनेको खोकर दूसरोंको जिलाती हुई चलनेवाली नारी! क्या वह दीन-हीन थी ? वह जो जितना ही देती है उतना ही मानो पाती है, उतनी अंदरसे प्रफुल्ल, विकसित, होती है;—वह जो सबमें समाकर भी अपनी है; जिसका अपना गढ़न है, अपना निर्माण है—निर्माण वह जो नकल नहीं है; क्योंकि आत्मविसर्जन नकल केवल चल नहीं सकता।

आश्चर्य होता है जब आजकी आत्यन्तिक व्यक्तिनिष्ठाको लेकर चलनेवाले लोग समाजवादी होनेकी बात करते हैं। जहाँ केवल अपना सुख, अपना ही विकास मुख्य है; जो एक छोटे परिवारके लिये अपना कुछ देनेको तैयार नहीं,

जो पाँच-दस आदमियोंके समाजमें अपना संतुलन एवं सामञ्जस्य नहीं स्थापित कर पाती है, वह एक बृहत्तर समाजकी सेवामें अपनेको कैसे संतुलित कर सकती है ? आजकी शिक्षा एक ओर अत्यन्त व्यक्तिधर्मी प्राणियोंकी सृष्टि करती चली जा रही है, जब सामाजिक प्रेरणाएँ मनुष्यके समाजधर्मी होनेकी बात करती हैं । व्यक्ति एवं समाजके इसी अन्तर्विरोधके विषदंशसे आजका सार्वजनिक जीवन असफल, विकृत, मूर्छित है ।

परिवार इसी व्यक्ति एवं समाजकी मिलनस्थली थी । वह प्रायोगिक समाजवादकी एक अत्यन्त प्राकृतिक शिक्षणशाला, प्रयोगशाला थी, जहाँ व्यक्ति व्यक्ति होकर भी दूसरोंमें समाहित था और समाज समाज होकर भी व्यक्तिकी स्वतन्त्र चेतनाके विकासमें बाधक न था । आधुनिक सभ्यताका अभिशाप समस्त विश्वमें यही है कि उसने प्राकृतिक समाजतत्त्वकी इस 'नर्सरी'—परिवारको विच्छिन्न कर दिया है । इसीलिये बातें वह चाहे जितनी बड़ी करे; किंतु उसका स्वप्न भङ्ग होता जा रहा है; जीवनके प्रत्येक खण्डमें अन्तर्विरोध, कराह, आह और असंतोष बढ़ता जा रहा है । आज मनुष्य मशीन न होकर भी जो मशीन बननेको विवश होता जा रहा है, उसीमें है मानवताका वास्तविक संकट ।

तब जिस पुरातन दाम्पत्यकी शृङ्खलासे नारीको मुक्त करनेका दम्भ लेकर हमने समाज-सुधारका नारा लगाया था, देखता हूँ उसमें फिर भी कुछ था,—कुछ सत्त्व था, कुछ ओज था । माना, कन्या संकुचित लक्ष्य लेकर एक गृहके आँगनमें प्रवेश करती थी; किंतु उसके हृदय-मकरन्दसे वह घर तो मधुमय हो उठता था । वह प्राणोंमें आत्मदानकी एक परम्परा, एक स्वप्न लिये आती थी । तमसाच्छन्न गृहमें स्नेह और आस्थाका वह दीप जलानेवाली नारी आज कहाँ है ? बाहरी वायुके झकोरोंको घुड़ककर अपने आँचलसे गृहके प्रकाशको न बुझने देनेवाली वह नारी आज कहाँ है ? सास-ससुर, देवरों, भौजाइयों एवं ननदोंको अपने स्पर्शसे जगा देनेवाली वह नारी आज कहाँ है ? माना, वह उतनी पढ़ी न थी; माना, वह पुरातन-पंथी थी किंतु एक पंथ तो उसका था, जब आज तो कोई भी पंथ हमारे जीवनमें नहीं है । वह पुरातन नारी अपने भरण-पोषणपर जितना व्यय कराती थी उससे अधिक अपने श्रमसे परिवारको लौटा देती थी । आजकी एक शिक्षिता आधुनिका वह है जिसके 'मेकअप' एवं परम व्यक्तिधर्मी प्रेरणाओंको कायम रखनेके लिये कुटुम्बका कर्त्ताके द्वारा हर तरहके उचित-अनुचित काम किये जानेपर भी 'पूरा' नहीं पड़ता । व्यय ही इस नारीके आभिजात्यका मानदण्ड है।

तो क्या पहलेकी गृहिणी खर्च नहीं करती थी ? करती थी किंतु उसका अधिकांश पहले तो सारे परिवारपर होता था; फिर तीर्थयात्रा, सत्सङ्ग, व्रत-पूजा, उत्सवपर होता था । धनका वितरण दूरतक होता था; विश्वासके साथ होता था । वह लड़कियोंको देती थी, बहुओंको देती थी, पुत्रोंको देती थी, पुरोहित-साधु-संतोंको देती थी, दीन-दुखियों, भिखारियों-अनाथोंको देती थी । और बड़ी होती तो मन्दिर, कुँओं, धर्मशालाओं, पौसलों, घाटों, क्षेत्रोंके निर्माणके लिये देती थी,—सैकड़ों उसके वैभवमें सम्मिलित होते थे । इसके अतिरिक्त परिवारपर कष्ट पड़नेपर जो कुछ उसके पास होता था, वह भी निकालकर सामने रख देती थी । आज भी देती है—पर आज वह सिनेमामें देती है, क्लबमें देती है, फैंसी ड्रेस बालमें देती है, 'ब्यूटीकल्चर', फैशन एवं प्रसाधन-सामग्रीकी दुकानोंमें देती है, और सब देकर भी हाथसे घरका काम-काज करना पिछड़ापन या दुर्भाग्य समझती है ! माना, बहुतोंको करना पड़ता है किंतु वह स्वभाववश, धर्म समझकर प्रसन्नतासे नहीं, खीझके साथ, अभावका रोना रोते-रोते, करती है ।

मेरी आँखोंके सामने नाच-नाच जाता है बम्बईका एक अत्यन्त सम्पन्न मारवाड़ी परिवार, जिसमें मैं अपनी पत्नीके साथ ठहरा हुआ हूँ । समुद्रकी उत्तुङ्ग तरङ्गें उनके घरसे टकरा-टकरा जाती हैं । नौकर-चाकर हैं, मोटरगाड़ी है, किंतु गृहिणी ५ बजे प्रातः नहा-धोकर चौकेमें महाराजके काममें सहायता करती, हमारे लिये जलपान बनानेमें लगी हैं । मैं घूमकर आता हूँ तो उनको इतने सुबह व्यस्त देखकर आश्चर्यसे खड़ा रह जाता हूँ । वह पूजा भी कर चुकी हैं । उनके मुखपर ओज है, जीवन मानो खेल रहा है, कर्त्तव्यको ऊर्जस्वित करता । सुना, कुछ-न-कुछ वह प्रतिदिन अपने हाथसे बनाती हैं, और बराबर रसोइयेको बताती, उसे सहायता करती, काम लेती रहती हैं । भोजनके समय मैंने उनसे साथ बैठनेको कहा—तो बोलीं—'आप हमारे अतिथि हैं, देवता हैं न ? पहले आपको खिलाकर तब खाऊँगी ।' मेरी आँखोंमें आँसू आ गये । मनने कहा—'यह है भारतकी देवी ।'

और तभी याद आ जाता है, अपने बचपनके एक मित्रका, जो अब भारत-सरकारके एक बड़े अधिकारी हैं । बहुत वर्षों बाद

एक शहरमें सहसा भेंट हो गयी। जबर्दस्ती हमें अपने यहाँ ले गये। मनमें शायद अपनी पत्नीको दिखानेका लोभ था—यह अहंकार भी कि देखो, हमें स्वर्गकी मेनका मिल गयी है। दूसरे दिन सुबह जरा देरसे घूमकर लौटा तो नौकरने बताया कि 'साहब तो बीबीजीके साथ सिनेमा गये हैं और वहीं किसी होटलमें खाकर लौटेंगे, आप जो कहें आपके लिये बना दूँ।' शामको मालूम हुआ कि दोनों क्लब गये हैं, रातको देरसे आयेंगे—ऐसा अक्सर ही होता है। एक क्षण वहाँ रहनेका मन न हुआ किंतु विवशता थी; तीन दिन रहा किंतु एक दिन भी आधुनिका कमलिनीका सुवास हमें न मिला। एक दिन मुश्किलसे 'चाय' के समय वह दिखायी पड़ीं और नौकरको दो-चार सुनाकर फिर गायब हो गयीं। मेरे मनने कहा—'हे भगवान्! यह भी क्या घर है?'

पत्नीके लिये हमारे यहाँ सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी, कामिनी, प्रमदा इत्यादि अनेक शब्द हैं। पुरानी नारी भी कामिनी थी, प्रमदा थी, किंतु वह सहधर्मिणी भी थी, अर्द्धांगिनी भी थी। आधुनिका सहधर्मिणी नहीं है, अर्द्धांगिनी नहीं है; क्योंकि वह पतिसे भिन्नमनसा है; उसके अपने विचार हैं, अपना व्यक्तित्व है—यही नहीं, यह धर्मभेद, मतभेद ही उसका गौरव है, इसीपर उसे अभिमान है। अभिजात वर्गकी आधुनिकाको घरके काम पसंद नहीं; घर उसके लिये कैदखाना है, भोजन संकट—ड्रेजरी है। पतिकी आयके सहारे घरको नौकर सँभालते हैं। उसमें उसका तन नहीं, मन नहीं, तन हो भी तो मन नहीं। पति किसी कार्यालयमें या व्यवसाय-प्रतिष्ठानमें काम करते हैं, इसलिये उनके काममें तो वह शरीक हो ही नहीं सकती। अब देखिये; पतिके जिस कार्यकी आयसे उसका घर चल रहा है उसमें वह शरीक नहीं, घर चलानेमें भी उसकी देन प्रायः नहीं-सी है; किंतु व्ययमें वह न केवल शरीक है, बल्कि इस विषयमें वही 'सीनियर पार्टनर' है—व्यय मुख्यतः उसीको लेकर है। तब सहधर्म क्या है? व्यक्तित्वमें स्वतन्त्र, मानस-जगत्में विच्छिन्न आजके उच्चवर्गीय आधुनिक शिक्षित दाम्पत्यमें पति-पत्नीका सम्बन्ध क्या है? दोनोंको जोड़नेवाली चीज क्या है? क्या शरीर-सुखमात्र नहीं? और इन्हींका कहना है कि पुरानी स्त्री क्या थी, एक बिकी हुई पुरुषके मनोरंजनकी गुड़िया!

हस्तश्रम, शरीरश्रमसे पलायन वह कोढ़ है जिसमें गल-गलकर बिखर जानेके लिये आजकी सभ्यता उसमें हमें तेजीसे ढकेल रही है। इसकी जगह निम्नवर्गको देखिये जो अपने पेशोंको अपनाये हुए हैं। मजदूरोंको देखिये, किसानोंको देखिये, पतिकी आयके साधनके जितने भी पेशे हैं, ये स्त्रियाँ किसी-न-किसी रूपसे उनमें भाग लेती हैं। नाई, लुहार, कुम्हार, धोबी, दर्जी, ग्वाला, मुराई, जुलाहा, किसान, कुनबी—मतलब जितनी भी दस्तकारियाँ या श्रमसाध्य पेशे हैं, उनमें पतिके काममें बराबर पत्नी गृहकार्योंको पूरा करनेके बाद भी सम्मिलित है। वह बँगलेमें रहनेवाली और नारी-उद्धारका नारा बुलंद करनेवाली स्त्रियोंसे अधिक आत्मनिर्भर है; क्योंकि गृहकार्यके अलावा भी वह पतिके जीवनधर्ममें बराबर भाग लेती है।

मैं मानता हूँ कि काल स्वयं एक धर्म है। समयके अनुसार न बदलनेवाली जातियाँ नष्ट हो जाती हैं, इसलिये मैं नारीकी पूर्ण मुक्तिका समर्थक हूँ। क्या है उसकी मुक्ति? यही कि प्रकृतिने उसको जो सौख्य, जो ममत्व, जो संस्कार, जो शक्ति, जो नारीत्व दिया है उसका अर्थ वह समझे और पुरुषका पदानुसरण न करके अपनी महिमाको देखे, अपने स्वरूपको पहचाने।

पाश्चात्य विचारक रूसोने एक जगह लिखा है कि 'स्त्री पुरुषको जो बनाती है वही वह बनता है।' आज स्त्री अपना यह कार्य भूल गयी है। इसीलिये हम गिर रहे हैं। जिस दिन हमारे गृहके निर्जन कक्ष मातृत्वके गर्भपूर्ण स्नेहाञ्चलके नीचे सुरक्षित दीपक-से जल उठेंगे, उसी दिन हम आदमी होंगे; जिस दिन वह कह देगी कि मेरा पति कायर न होगा या मेरा बेटा मेरे दूधको न लजायेगा, उसी दिन हमारे पौरुषके हुंकारसे पृथिवी काँप उठेगी। जिस दिन वह अन्तर्मधु ओठोंमें लिये मुस्करायेगी, उसी दिन हमारे निरानन्द कक्ष, जहाँ आज केवल कृत्रिम प्रेमका अभिनय होता है, सच्ची प्रेमल ज्योतिसे जगमग हो उठेंगे। कवि! यदि तुम सचमुच नारीकी मुक्तिका गान गाते हो तो उसमें इस मातृत्व-बोधको जगा दो; सुधारक! यदि तुम उसकी शृङ्खलाओंको सचमुच काटना चाहते हो तो उसे अपने नहीं, उसीके पैरों चलने दो; तुम अपनी बात मत कहो, उसीको बोलने दो, उसे आत्मदर्शन करने दो।

इतने राजनीतिक वाद हैं; इतने आन्दोलन हैं; इतनी सभाएँ—संस्थाएँ हैं; इतना उपदेश—उद्बोध है; इतनी योजनाएँ हैं, फिर भी तन मूर्च्छित है, मन मूर्च्छित है, उल्लास सो गया

है और हृदय तो मानो है ही नहीं। ऐसा ही होगा, ऐसा ही रहेगा। जबतक कि हमारे गृहोंमें दाम्पत्यकी अभिन्नताका शंख नहीं बजेगा; जबतक हमारे गृह मातृपूजासे अभिनन्दित न होंगे; जबतक नारीमें, कामिनीमें माँ नहीं बोलेगी—आत्मदानमयी माँ, सर्वस्वार्पणकारी माँ, महिमामयी माँ, अपनी शक्तिसे जीती माँ।

इतना ही मैं कहता रहा हूँ; इतना ही फिर आज कह रहा हूँ। मुक्ति जो बन्धन बने, उस मुक्तिको ले क्या करूँगा।

पुनर्जन्म

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

डा० ह्यूम वॉन एरिच जीवाणु-वैज्ञानिक हैं मुख्य रूपसे। वैसे आज विज्ञानकी अनेक शाखाएँ परस्पर उलझ गयी हैं। रसायन-विज्ञान और परमाणु-विज्ञानके बिना आज जीवाणु-विज्ञानमें प्रगति नहीं की जा सकती। स्वभावतः डा० एरिचने इन विज्ञानकी शाखाओंमें भी अच्छा अध्ययन किया है। उनका प्रयोग चल रहा है और उन्हें लगता है कि मनुष्यमें आनुवंशिकता अङ्कित करनेवाली जो प्रकृतिकी लिपि है, उसमें परिवर्तन करनेकी कुंजी सैद्धान्तिक रूपमें उनके हाथ आ गयी है।

किंतु डा० एरिच अपनी शोधमें आगे बढ़ें, इससे पहले उनके सम्मुख एक नवीन समस्या आ खड़ी हुई है। उनका पाँच वर्षका पुत्र कल शामको सहसा एक विचित्र भाषा बोलने लगा। कठिनाईसे डा० एरिचको पता लगा कि वह शुद्ध संस्कृत बोल रहा है। यह भी पता इसलिये लगा कि डाक्टरका सहकारी किसी कामसे उनके पास घरपर आया था और वह संस्कृत जानता—समझता तो नहीं; किंतु इतना समझ सकता है कि यह संस्कृत-भाषा है।

डाक्टर एरिचके पूर्वपुरुष इटलीसे अमेरिका आये थे। उनकी पत्नी भी इटालियन हैं। जहाँतक डाक्टरकी जानकारी है, दम्पतिमेंसे किसीकी चार-छः पीढ़ियोंमेंसे कोई संस्कृत जाननेवाला नहीं हुआ था। तब बच्चेको यह संस्कृतका ज्ञान कहाँसे मिला ? समस्या जटिल थी। डाक्टर इसके अतिरिक्त क्या कर सकते थे कि बच्चेकी बातको टेप रिकार्ड कर लें और उसका अनुवाद प्राप्त करनेका प्रयत्न करें।

बच्चा स्वयं अपनी बातका अनुवाद अपने पिताको बतला रहा था और जब संस्कृतमें बोली उसकी बातोंका टेप रिकार्ड अनुवादके लिये भेजा गया, तब अनुवाद होकर आनेपर इस बातकी पुष्टि हो गयी कि बच्चा अपना अनुवाद ठीक करता है।

'मैं एक भारतीय योगी हूँ। मेरा नाम ज्ञाननाथ है। काँगड़ा (भारत) से थोड़ी दूरपर मेरी कुटी है। एक बार दो अमेरिकन यात्री मिले थे मुझे। उनके संगसे अमेरिका देखनेकी इच्छा हुई। यह इच्छा बनी रही और शरीर छूट गया। मुझे यहाँके दो-चार बड़े नगर दिखा दो। फिर मैं भारत जाकर अपनी साधना पूरी करूँगा।' बच्चेकी सब बातोंका यही सारांश था।

बच्चेको वैज्ञानिकों—मनोवैज्ञानिकों तथा शरीर-विशेषज्ञोंकी देखरेखमें रक्खा गया। संस्कृतके ज्ञाताओंने उससे पूछताछ की। बच्चा काँगड़ाके आसपासके स्थानों, निवासियों, रीति-रस्मोंका ठीक-ठीक वर्णन करता था। वह कहता था कि उसने काशीमें संस्कृत पढ़ी है। उसके पिताके घर कोई नहीं है। नाथमार्गके किसी योगीसे उसने दीक्षा ली थी। सबसे विचित्र बात यह

कि वह अब बड़े सबेरे—अँधेरा रहते ही स्नान करना चाहता था। स्नान करके भारतीय योगियोंके समान नीचे फर्शपर बैठकर आँखें बंद करके पता नहीं क्या करता रहता था। देरतक और कभी-कभी जोरसे चिल्लाकर बोलता था—'अलख !'

× × ×

माता-पिताके द्वारा जब प्रथम दिन बालक गर्भमें आता है; केवल एक कलल होता है माताके उदरमें। उसमें सोलह कोशिकाएँ पितासे और सोलह मातासे आयी होती हैं। इन कोशिकाओंके केन्द्रक (न्यूक्लियस) होते हैं।

इन केन्द्रकोंके घेरेमें होते हैं गुणसूत्र (क्रोमोसोम) और इन गुणसूत्रोंमें स्थान-स्थानपर गाँठें होती हैं। इन गाँठोंको संस्कारकोष (जीन) कहते । इन संस्कारकोषोंकी संख्या एक कोशिकामें अरबोंमें है। वस्तुतः ये कोष एक ऐंठी सीढ़ीके आकारमें हैं और कुण्डली मारकर गाँठ-जैसे बन गये हैं। इनको फैला दिया जाय तो यह सीढ़ी मनुष्यके पूरे शरीरकी लंबाईके दो तिहाईसे अधिक होती है।

एक संस्कारकोषमें प्रकृतिके एक अरब अक्षरोंमें यह लिखा होता है कि गर्भस्थ शिशुकी आकृति, रंग, कद आदि कैसा होगा ? प्रकृतिके इन अक्षरोंको वैज्ञानिक एमोनो एसिड कहते हैं जो विभिन्न क्रमसे लगे होते हैं। डाक्टर एरिच दीर्घकालसे परमाणु-विकिरण तथा विषाणुके द्वारा इन नैसर्गिक अक्षरोंके क्रममें परिवर्तनकी चेष्टामें लगे हैं। एक सीमातक वे सफल हो गये हैं।

'एक कललमें स्थित सभी गुणसूत्रोंके संस्कारकोषोंमें समान लिपि नहीं है।' डाक्टर एरिचने यह नवीन खोज की है। 'लगता है—शरीरके विभिन्न अङ्गोंकी बनावटके आदेश विभिन्न संस्कार-कोषोंमें हैं।'

'इन संस्कार-कोषोंके अनेक आदेश कई-कई पीढ़ियोंतक अक्रिय पड़े रहते हैं और कभी किसी समय सक्रिय हो सकते हैं।' ऐसा क्यों होता है ? अभी इसका कोई उत्तर विज्ञानके पास नहीं है।

किंतु यह सब तो माता-पिताद्वारा प्राप्त आनुवंशिकताकी बात है। वैज्ञानिक इसे समझते हैं और इस आनुवंशिकताको आज नहीं तो, कुछ वर्षों बाद इच्छानुसार परिवर्तित कर लेनेकी उन्हें आशा है। यद्यपि लक्ष्य दूर है और अनेक उलझन-भरे प्रश्न सुलझानेको अभी अछूते पड़े हैं।

यह बच्चेका संस्कृत बोलना क्या है ? यह उसका पुनर्जन्म ? डाक्टर एरिचकी समझमें यह बात एकदम नहीं आ रही है। साथ ही इसे आनुवंशिकता कह देनेका भी कोई कारण नहीं दीखता।

वैज्ञानिक हठधर्मी नहीं होता। वह सत्यका शोधक होता है। डाक्टर एरिचको लगा कि उनके बच्चेके सम्बन्धमें शोध करनेके लिये भौतिकविज्ञानके वर्तमान साधन पर्याप्त नहीं हैं। परलोकवादियोंकी सहायता उन्हें अपेक्षित है।

× × ×

'पुनर्जन्म कैसे होता है ?' एक परलोक-विद्याके अमेरिकन ज्ञाताने बच्चेसे पूछा।

'इनमेंसे किसी टुकड़ेको पकड़ो।' बच्चेने अपना प्लास्टिकके खिलौनेका वह बक्स उलट दिया, जिसके टुकड़ोंसे वह अक्षर बताया करता था।

'इस टुकड़ेसे जो टुकड़े जुड़ सकें, उनसे एक अक्षर बनाता है।' झटपट बच्चेने एक अक्षर बनानेवाले टुकड़े जोड़ दिये और बोला—'अब ऐसे ढंगसे इससे मिलाते अक्षर जोड़ते जाता है कि कम-से-कम अक्षर बनाकर हम 'म' तक पहुँच सकें।'

'तुम खेलमें लग गये। मेरे प्रश्नका उत्तर तुमने दिया नहीं।' प्रश्नकर्ताने बच्चेको रोका।

'मैं आपको उत्तर ही दे रहा हूँ। मैं एक भारतीय साधु हूँ। साधु खिलौनोंसे खेला नहीं करते।' बच्चा तनिक अप्रसन्न हुआ—'तुम क्या कुछ समझते नहीं हो?'

'हम सचमुच कुछ नहीं समझ सके।' नम्रतापूर्वक प्रश्नकर्ताने स्वीकार किया।

'मनुष्य मरते समय जो कामना करता है, वह उस टुकड़ेके समान है, जिसे तुमने पहले उठाया था। मनुष्यके पास उसके वर्तमान जीवन और पहलेके अनेक जन्मोंके लाख-लाख संस्कार होते हैं। यहाँ तो ये थोड़ेसे टुकड़े हैं।' बच्चेने उन टुकड़ोंको एक बार हाथसे उलट-पलट दिया।

'मरनेके समयकी अन्तिम कामनासे मेल करनेवाले संस्कार भी अनेक प्रकारके प्रारब्ध बना सकते हैं; किंतु ध्यान यह रखना पड़ता है कि ऐसा प्रारब्ध बने, जिससे मेल खाते दूसरे प्रारब्ध बनते चले जायँ और 'म' तक पहुँचनेके लिये प्रारब्धोंकी छोटी-से-छोटी जंजीर बने।' बच्चेने इस भावसे देखा, जैसे वह अपनी पूरी बात समझा चुका है।

'म' तक पहुँचनेकी बात ही क्यों?' प्रश्नकर्ताने पूछा।

'मनुष्यका प्रारब्ध ही अन्तिम प्रारब्ध होता है। केवल मनुष्यके मरनेपर प्रारब्ध शृङ्खला बनती है और मनुष्य-जन्मका प्रारब्ध बनाकर वह पूरी हो जाती है।' बच्चेने बताया—'दूसरे प्राणी तो उस शृङ्खलाके बीचके प्रारब्धोंसे उत्पन्न होते हैं। मनुष्य ही साधन करके मुक्त हो सकता है।'

'यदि आप अपने साधनको इस जीवनमें भी पूर्ण न कर सके।' प्रश्नकर्ता बच्चेको आदरपूर्वक ही सम्बोधित कर रहा था; क्योंकि वह जानता था कि उपेक्षा प्रकट होनेपर बच्चा असंतुष्ट हो जायगा।

'मैं इस बार अवश्य पूर्णत्व प्राप्त करूँगा।' बच्चा तनिक उत्तेजित हुआ और तुरंत शान्त भी हो गया। 'मान लो तुम्हारी ही बात ठीक निकले, ऐसा सम्भव नहीं है। तब भी कुछ हानि नहीं है। मैं सावधान रहूँगा कि जीवनमें साधनके विरोधी भाव न आवें। कुछ प्रमादवश आ गये तो वे अगले प्रारब्ध बनते समय संचितमें चले जायँगे और मैं फिरसे साधनमें आगे बढूँगा। साधकका पतन नहीं होता। वह जितना चल चुका, अब उससे आगे ही उसे चलना रहता है।'

'संचित क्या?' प्रश्नकर्ताकी समझमें यह बात आयी नहीं थी।

'ये टुकड़े जिनका हमने उपयोग नहीं किया, संचितके समान हैं।' बच्चेने बताया—'जिन कर्म-संस्कारोंका उपयोग प्रारब्ध-शृङ्खलाके निर्माणमें नहीं हुआ, उनकी राशिका नाम संचित है।'

'उनका उपयोग कब होगा?'

'अगली बार प्रारब्ध बनते समय। यदि मनुष्य जीवनमें मुक्त न हो जाय।' बच्चेने कहा—'मुक्त पुरुषका संचित भस्म हो जाता है और यह याद रक्खो कि साधनके संस्कार संचितमें कभी फेंके नहीं जाते। वे सदा प्रारब्ध बनानेके लिये चुने जाते हैं।'

यह सब व्यवस्था कौन करता है?'

प्रश्नकर्ता देरसे यह बात पूछनेको उत्सुक थे। 'ईश्वर ही यह सम्पूर्ण व्यवस्था करता है?'

'ईश्वर करता है, ऐसा कह सकते हैं।' बच्चा बहुत गम्भीर हो गया। 'वस्तुतः यह व्यवस्था ईश्वरका विधान करता है। हम उस कर्म-विधानके नियन्ताको यमराज

कहते हैं। मैं नहीं जानता कि दूसरे लोग उसे क्या कहते हैं। वैसे यमराजके सम्बन्धमें मुझे कुछ अधिक पता नहीं है।'

'मृत्युके पश्चात् और जन्मसे पूर्व आपकी जो अवस्था थी, उसके सम्बन्धमें आप कुछ बतायेंगे?' प्रश्नकर्ताने अपना अन्तिम प्रश्न किया।

'परमात्मा नहीं चाहता कि यह रहस्य जीवोंपर प्रकट हो।' बच्चेने कोई उत्सुकता व्यक्त नहीं की। बड़ी कठिनाईसे अनेक बार पूछनेपर उसने कहा— 'आपको इससे कोई लाभ नहीं होगा। देहत्यागके पश्चात् जीव केवल जीव नहीं होता। कारण-शरीर और सूक्ष्म-शरीर अर्थात् मन और बुद्धि तो उसके यहींके होते हैं। एक आतिवाहिक शरीर भी उसे मिल जाता है, जिसकी आकृति प्रायः उसके भौतिक स्थूल-शरीर-जैसी होती है। वह भावलोक है, जहाँ उस आतिवाहिक देहमें जाना पड़ता है। अतएव जिसकी जैसी भावना जीवनमें होती है, उस प्रकार ही उसे वह भावलोक दीखता है।'

बच्चा थक चुका था। उस दिनका प्रश्न-कार्य रोक देना पड़ा।

× × ×

'मुझे अमेरिका देखना है। पहले मुझे यहाँके मुख्य-मुख्य स्थान दिखला दो।' बच्चेने हठ पकड़ लिया। वह किसीके प्रश्नोंका उत्तर देता नहीं था। डाक्टर एरिचको उसका हठ रखना पड़ा। अपनी प्रयोगशाला सहकारीको सौंपकर पत्नी और पुत्रके साथ वे यात्राके लिये निकले।

डाक्टर एरिचका पुत्र सामान्य बालकोंसे नितान्त भिन्न था। वह केवल फल-मेवे खाता और दूध पीता था। अनेक बार संस्कृत बोलने लगता था। किसी भी दृश्यके प्रति उसने कोई विशेष आकर्षण प्रकट नहीं किया।

यात्रा अधिक दिन चली भी नहीं। बच्चा बार-बार हठ कर रहा था कि उसको भारत भेजनेकी व्यवस्था कर दी जाय। वह अपनी मातासे अनेक बार पूछ चुका था कि भारत जानेका मार्ग क्या है और वहाँ जानेके लिये क्या करना पड़ता है?

डा० एरिच देशसे बाहर जानेको प्रस्तुत नहीं थे। उनकी प्रयोगशालाका काम अधूरा पड़ा था। बच्चेको अकेले भेजनेकी बात सोची नहीं जा सकती थी। पत्नीने अवश्य प्रस्ताव किया था कि यदि डाक्टर छः महीने बाद भारत आनेका वचन दें तो वह पुत्रको लेकर जा सकती है और वहाँ पतिकी प्रतीक्षा करेगी।

यह सब कुछ करना नहीं पड़ा। अभी पासपोर्टके लिये निवेदन भेजा ही गया था कि बच्चा एक दिन सबेरे स्नान करके आसन लगाकर बैठा और कुछ क्षण पीछे 'अलख' की उच्चध्वनिके साथ उसने देह त्याग दिया। सम्भवतः उसका देह अमेरिका-दर्शनकी कामनाका ही परिणाम था। कामना पूर्ण होते ही देह पूरा हो गया।

'सत्'में सुस्थित रहो

सत्ता कभी न 'असत्'की, 'सत्'का नहीं अभाव।
'सत्'में नित सुस्थित रहे, हो न असतमें भाव॥
'द्वन्द्व' जानकर 'असत्' सब, करो न हर्ष-विषाद।
नित्य सत्य हरिका सदा अनुभव करो प्रसाद॥

जगदम्बा श्रीसीताजी

(लेखक—श्रीहरेशचन्द्रजी अग्रवाल, एम्० ए०)

सीता चरन प्रनाम करि, उरहिं सुमिरि रघुनाथ।
बरनउँ मातु चरित्र को, पावन करन सनाथ॥

भारतीय धर्मके क्षेत्रमें कौन ऐसा है जो जगज्जननी जगदम्बा, सती साध्वी, पतिव्रता रामभार्या श्रीसीताजीके गुणोंका वर्णन कर सके ? भारतीय स्त्रियोचित जितने भी गुण—पातिव्रत्य, त्याग, शील, निर्भयता, शान्ति, क्षमा, सौहार्द, सहनशीलता, धर्मपरायणता, नम्रता, संयम, सेवा, सदाचार, व्यवहारपटुता, साहस, शौर्य आदि हैं, सभी उनमें साक्षात् रूपमें मूर्तिमान् थे। उनके सदृश पवित्र जीवन वेद, पुराण, इतिहास आदि भारतीय ग्रन्थोंके पात्रोंमें मिलना दुर्लभ है। ठीक ही कहा गया है—

सब गुन अवधि न दूसर पटतर लायक।

रामायणके अन्तर्गत, जन्मके उपरान्त सर्वप्रथम जनकनन्दिनी गौरीपूजा-हेतु जनकवाटिकामें जाती हुई दृष्टिगोचर होती हैं, परंतु वह भी माताकी आज्ञासे और सखियोंके साथ हैं, जिससे समाजकी मर्यादाका उल्लङ्घन न हो।

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
संग सखीं सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥
—मानस

जनकपुरीमें श्रीरामके आगमनके कारण जो हलचल मची हुई थी, उससे परिचित होनेपर भी उनके अंदर वैसी जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हुई जैसी नगरके अन्यान्य सभी बाल-वृद्धोंमें पायी जाती थी। श्रीराम-लक्ष्मणको देखनेकी इच्छा उस समय जाग्रत् होती है, जब एक सखी उन्हें वाटिकामें ही फूल तोड़ते देख मोहित हो, आकर कहती है—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
—मानस

साधारण स्त्रियोंके समान श्रीसीताजी, राम-दर्शनके लिये व्यग्र नहीं होतीं, बल्कि अपने मनकी उत्कण्ठा मनमें ही छिपाये हुए हैं। यदि उनके अंदर दर्शनकी अभिलाषा है तो उसका कारण है—

चलीं अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥
—मानस

श्रीसीताजीकी यह पुरातन प्रीति भी स्वतः जाग्रत् नहीं हुई है, बल्कि त्रिकालदर्शी भगवद्भक्त नारदजी इसके कारण थे। उनका प्रेम वासनारहित था—

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥
—मानस

इसी 'पुनीत प्रीति' के निर्वाह-हेतु ही श्रीसीताजी व्यग्र हैं—

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
—मानस

इसके पश्चात् जब अन्तमें जनकललीसे नहीं रहा गया और श्रीरामको अपनाना अनिवार्य हो गया, उस समय उन्होंने उचित ही किया—

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी॥

इस प्रकार उन्होंने अपने जीवननाथपर अधिकार कर अपने प्रेमको स्थायित्व देनेके विचारसे गौरी-मन्दिरमें जाकर गौरीसे प्रार्थना की—

मोर मनोरथ जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें॥
—मानस

और तब जगज्जननी गौरी प्रकट होकर कहती हैं—

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा॥
—मानस

इसके पश्चात् जनकपुरीकी रङ्गभूमिमें आनेपर भी जनकनन्दिनीका ध्यान श्रीरामकी ओर लगा हुआ है—

सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥
मनही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥
—मानस

इस अवसरपर मन एवं हृदयमें उथल-पुथल होनेपर भी वे धैर्य धारण करके कहती हैं—

तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

श्रीरामके धनुष तोड़नेके उपरान्त श्रीसीताकी दशा विचारने योग्य है—

सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥
तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू॥
—मानस

सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे।
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता॥
मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चरणनूपुरा।
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी॥
रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ।
ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलंकृताः॥
—अध्यात्मरामायण

'तत्पश्चात् सर्वालङ्कारविभूषिता, स्वर्णवर्णा श्रीसीताजी अपने दाहिने हाथमें स्वर्णमयी माला लिये मन्द-मन्द मुसकाती हुई वहाँ आयीं। वे मुक्ताहार, कर्णफूल और झमझमाते हुए पायजेब आदि आभूषणोंसे विभूषिता थीं तथा शरीरमें अति उत्तम साड़ी पहिने हुए थीं, जिसमेंसे उनके पयोधर झलक रहे थे। सीताजी नम्रतापूर्वक मुसकाते हुए वह जयमाला श्रीरामके ऊपर डालकर प्रसन्न हुईं।'

इसके पश्चात् विवाहके अवसरपर भी श्रीसीताजीका मन श्रीरामरूपी कमलपर भौंरा बन उनके रूपका रस ले रहा है—

दूलह श्रीरघुनाथु बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूपु निहारति जानकी कंकनके नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रहीं पल टारत नाहीं॥
—कवितावली १। १७

विवाहके उपरान्त, अयोध्या आनेपर श्रीराम और सीताके परस्पर प्रेमकी झलक यह थी—

रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून्।
मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः॥
तया स राजर्षिसुतोऽभिकामया
समेयिवानुत्तमराजकन्यया।
अतीव रामः शुशुभे मुदान्वितो
विभुश्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः॥
—वाल्मीकिरामायण

'श्रीराम सदा सीताके हृदय-मन्दिरमें विराजमान रहते थे तथा मनस्वी श्रीरामका मन भी सीतामें ही लगा रहता था। श्रीरामने सीताके साथ अनेक ऋतुओंतक विहार किया। श्रेष्ठ राजकुमारी सीता श्रीरामकी ही कामना रखती थीं और श्रीराम भी एकमात्र उन्हींको चाहते थे; जैसे लक्ष्मीके साथ देवेश्वर भगवान् विष्णुकी शोभा होती है उसी प्रकार उन सीतादेवीके साथ राजर्षि दशरथनन्दन श्रीराम परम प्रसन्न रहकर शोभा पाने लगे।'

उपर्युक्त वर्णनमें आरम्भिक अवस्थासे ही जनकदुलारी सीताके पातिव्रत्य-धर्मके निर्वाहकी एक झलक मिल जाती है और यह निश्चित हो जाता है कि वे किसी भी दशामें भविष्यमें श्रीरामका साथ न छोड़ अपने धर्म एवं प्रेमका निर्वाह करेंगी जो एक भारतीय नारीका परम धर्म है। दोनोंके हृदय शुद्ध और पवित्र थे तथा उनमें प्रेमबेलि शनैः-शनैः पल्लवित होकर मकरन्दपूर्ण सुन्दर सुगन्धित पुष्प धारण कर रही थी।

इसके पश्चात् घटना-चक्र आगे बढ़ा और श्रीरामको राज्याभिषेकके स्थानपर वन-गमनकी तैयारी करनी पड़ी। उनका यह वन-गमन एकाकी न होकर संयुक्त था; क्योंकि श्रीरामके साथ वनवासकी आज्ञा न होते हुए भी सीता और लक्ष्मणको भी वनकी ओर प्रस्थान करना पड़ा था। जानेके पूर्व जब श्रीरामने पतिव्रता सीताको समझाना प्रारम्भ किया और उनपर यह भार डाला कि वे अयोध्यामें ही रहकर सास-ससुरकी सेवा करें तो अधिक उचित होगा। तब कुल-मर्यादाकी रक्षा तथा पातिव्रत्य धर्मका पालन करती हुई सीता बोलीं—

अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्त्वमेष्यसि।
इत्याह मां विना गन्तुं तव राघव नोचितम्॥
—अध्यात्मरामायण

'पहले मैं वनको जाऊँगी, उसके पीछे आप आना। हे राघव! मुझे छोड़कर आपको वनमें जाना उचित नहीं है।'

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ॥
(वाल्मीकिरामायण अयो० २७ । ६-७)

'स्त्रियोंके लिये इस लोक और परलोकमें एकमात्र पति ही सदा आश्रय देनेवाला है । पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा यह अपना शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है । रघुनन्दन ! यदि आप आज ही दुर्गम वनकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं रास्तेके कुश-कण्टकोंको कुचलती हुई आपके आगे-आगे चलूँगी ।'

इसीके साथ स्त्रीधर्मकी रक्षा, पातिव्रत्य-धर्मकी मर्यादा तथा कुलवधूकी लीककी स्थापना करती हुई जगन्माता सीताजीने पुनः सूर्यकुल-उजागर श्रीरामसे कहा—

तनु धनु धाम धरनि पुर राजू । पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन भारू । जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल ॥
—मानस

इस प्रकार श्रीसीताजीने उस अवसरपर पतिके प्रति प्रेम-पूर्ण अनेक वचन कहे, किंतु अपने निश्चयसे तनिक भी विचलित नहीं हुईं । पति-सेवाके सम्मुख संसारके सारे सुखोंको तुच्छ समझती हुई, उन्होंने तत्कालीन दुःखपर विजय प्राप्त करनेका पूर्ण साहस प्रदर्शित किया जिससे श्रीरामको भी श्रीसीताके वनगमनके लिये कटिबद्ध होनेका निश्चित पता लग गया । वे श्रीरामके द्वारा घर रहनेकी बातपर कोई भी परवा नहीं करतीं ।

श्रीरामजीने कहा—

कुस कंटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना ॥
कंदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥
नर अहार रजनीचर चरहीं । कपट बेष बिधि कोटिक करहीं ॥
हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ॥
—मानस

श्रीरामके इतना सब कहने-सुनने और माता कौसल्याके समझानेपर भी वे कहती हैं—

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं । पिय बियोग सम दुख जग नाहीं ॥
प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥

फलस्वरूप श्रीसीताजीके प्रेम तथा धर्मकी उचित परीक्षा हो जानेपर श्रीरामको बाध्य होकर कहना पड़ा—

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
—मानस

अयोध्यासे वनकी ओर गमन करनेके पश्चात् मार्गमें अपने धर्मका पालन करती हुई रघुकुलवधू श्रीसीताजी पतिके साथ ही भूमिपर शयन करती हैं—

बिबिध बसन उपधान तुराईं । छीर फेन मृदु बिसद सुहाईं ॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं । निज छबि रति मनोज मृदु हरहीं ॥
ते सिय रामु साथरीं सोए । श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए ॥

इस सम्बन्धमें श्रीसीताजीके बारेमें और अधिक क्या कहा जा सकता है—

पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ । ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥
रामचंदु पति सो बैदेही । सोवत महि बिधि बाम न केही ॥
—मानस

गङ्गा-तटसे पुनः अयोध्याकी ओर लौटनेके लिये मन्त्री सुमन्त्रके कहनेपर श्रीसीताजी कहती हैं—

पितु बैभव बिलास मैं डीठा । नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा ॥
ससुर चक्कवइ कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा । मोहि सब सुखद प्रानपति संगा ॥

श्रीसीताजीके ऐसा कहनेपर तथा उन्हें दृढ़प्रतिज्ञ समझकर सुमन्त्र निरुत्तर हो लौट जाते हैं । मातामें ममत्वकी कमी नहीं । लक्ष्मणके लिये उनका प्रेम माताके प्रेमसे भी बढ़कर है, इसका लक्ष्मणजी स्वयं अनुमत प्राप्त किये हुए हैं—

जलको गए लक्खनु, हैं लरिका, परिखौ पिय ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ॥
—कवितावली

आज सीताके समान कौन-सी ऐसी भाभी होगी, जो लक्ष्मण ऐसे देवरके सुख-दुःखका ख्याल रक्खेगी ? इसके अतिरिक्त अयोध्यासे दूर तथा सास-ससुरके प्रभावसे स्वतन्त्र होने एवं पति-देवरके साथ होनेपर भी वे भारतीय नारी-धर्मका पालन करती हैं। मार्गकी स्त्रियोंके पूछनेपर भी श्रीरामके बारेमें मुँहसे कुछ न कहकर केवल नेत्र और भौंहोंके संकेतसे कहती हैं—

पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहौ, साँवरे-से सखि रावरे को हैं ।
सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन, दे सैन, तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चलीं ।
—कवितावली

इसके पश्चात् वाल्मीकि मुनिके संकेतानुसार श्रीराम चित्रकूटमें मन्दाकिनीके तटपर अपनी कुटी बना वन-विहार करते हुए तपस्या करने लगे तथा जगदम्बा सीताजी भी आनन्दमय जीवनको धन्य बनानेके हेतु कुटीके चारों ओर पेड़-पौधोंको जीवन-सहचर मान उनका पालन-पोषण करती हुई गुनगुनाने लगीं—

औरोंके हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरोंपर खड़ी आप चलती हूँ,
श्रमवारि बिन्दुफल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ,
अपने अञ्चलसे व्यजन आप झलती हूँ,
तनु-लता-सफलता-स्वाद आजु ही आया ।
मेरी कुटियामें राजभवन मन भाया ॥
—साकेत

श्रीसीताजीके गुनगुनानेपर भावोंसे भर श्रीराम भी कहते हैं—

आमोदिनि, तुमको कौन छिपा सकता है ?
अन्तरको अन्तर अनायास तकता है ।
बैठी है सीता सदा रामके भीतर ।
जैसे विद्युद्द्युति घनश्यामके भीतर ॥—साकेत

इस प्रकार कोसलराज्यके प्रासादोंमें विचरण और क्रीड़ा करनेवाली विदेहनन्दिनी दुःखको सुख मानकर वनमें निवास किया करतीं एवं हृत्तन्त्रीके उलझे-पुलझे तारोंको सुलझाकर आनन्द-राग निकाला करती थीं। भरतजीके यह कहनेपर—

जो कोसलेश्वरी हाय ! वेश ये उनके ?
मण्डन हैं अथवा चिन्ह शेष ये उनके ?—साकेत

श्रीसीता माता कहती हैं—

देवर न रुलाओ आह, मुझे रोकर यों,
कातर होते हो तात, पुरुष होकर यों ?
स्वयमेव राज्यका मूल्य जानते हो तुम,
क्यों उसी धूलमें मुझे सानते हो तुम ?
सौ-सौ रत्नोंसे इसे अधिक तुम लेखो ।
शत चन्द्रहार उस एक अरुणके आगे,
कब स्वयं प्रकृतिने नहीं स्वयं ही त्यागे ?
—साकेत

इस प्रकार जनकदुलारी सीताजी जीवनदर्शनसे पूर्ण परिचित थीं और उसीके प्रकाशमें निज समस्याओंको सानन्द सुलझाया करती थीं। इसके अतिरिक्त सीताजीकी शीलता एवं लज्जा भी कम नहीं। चित्रकूटमें उनके आचार-व्यवहार-पर विचार कर ही परम तत्त्वज्ञानी महान् योगी विदेहराजने ठीक ही कहा था—

पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ ॥
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
—मानस

इसीके साथ श्रीसीताका रात्रिमें माता-पिताके पास न रहकर सासुओंकी सेवामें रहनेका निश्चित करना कितना महत्त्वपूर्ण है जो सहजमें ही उन्हें वधू-धर्मके साधारण धरातलके ऊपर उठा देता है जो अन्य वधुओंके लिये भी अनुकरणीय है—

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं ॥
—मानस

इसके पश्चात् चित्रकूटको छोड़ वनमें आगे बढ़ने तथा अत्रि मुनिके आश्रमपर पहुँचने एवं सती साध्वी तपस्विनी अनसूयाजीसे मिलनेपर जो परस्पर सम्भाषण हुआ है, उससे श्रीसीताजीके विचार सुनने और मनन करनेयोग्य हैं—

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥

यद्यप्येष भवेद् भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः।
अद्वैधमत्र वर्तव्यं तथाप्येष मया भवेत्॥

—वाल्मीकिरामायण

सीताजी बोलीं—'देवि ! मेरे पतिदेव यदि अनार्य (चरितहीन) तथा जीविकाके साधनोंसे रहित (निर्धन) होते, तब भी मैं बिना किसी दुविधाके उनकी सेवामें लगी रहती।'

प्रकृतिरूपा श्रीसीताजीके इन वचनोंसे स्पष्ट है कि उन्हें अपने पातिव्रत्य-धर्मका पूर्ण ज्ञान था और प्रतिक्षण उसीके पालनपर उनका ध्यान केन्द्रित रहता था; क्योंकि स्त्रीका यही आभूषण है। इसी आधारपर प्रभावित हो सती अनसूयाजीने उन्हें दिव्य वस्त्र-आभूषण आदि उपहाररूपमें भेंट किये थे और जिन्हें देखकर श्रीराम भी बड़े प्रसन्न हुए थे।

यहाँपर पातिव्रत्य-धर्मके सम्बन्धमें श्रीसीताजीके प्रति सती अनसूयाजीके वचन मननयोग्य हैं—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

—मानस

उपर्युक्त उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि श्रीसीताजीके मनमें श्रीरामजीके प्रति हर समय एक ही भाव रहता था। वे प्रतिक्षण तन, मन, धनसे पतिसेवामें ही लीन रहती थीं। वन-पथमें दण्डकारण्यकी ओर जाते हुए भी, पतिके कल्याण-हेतु उनके तापसवेश एवं क्षत्रिय-धर्मपर विचार करती हुई कहती हैं—'हे महाबाहु ! इसमें संदेह नहीं कि इस संसारमें कामसे उत्पन्न होनेवाले तीन ही ऐसे व्यसन हैं, जिनसे मनुष्यका बचना अनिवार्य है—मिथ्याभाषण, परस्त्रीगमन और बिना शत्रुताके ही दूसरोंके प्रति क्रूरताको धारण करना। इसमेंसे प्रथम दो आपके पास फटक नहीं सकते, क्योंकि आप धर्मनिष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ और पितृ-आज्ञा-पालक हैं; किंतु दूसरोंके प्राणोंके लेनेके सम्बन्धमें मुझे कुछ संदेह है; क्योंकि आपने ऋषियोंकी रक्षाहेतु राक्षसोंके वधका प्रण किया है। इसके अतिरिक्त मेरे संदेहका एक कारण और है—

क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च।
समीपतः स्थितं तेजोबलमुच्छ्रयते भृशम्॥

—वाल्मीकिरामायण

'जैसे आगके समीप रक्खे हुए ईंधन उसके तेजरूप बलको अत्यन्त उद्दीप्त कर देते हैं, उसी प्रकार जहाँ क्षत्रियोंके पास धनुष हो तो वह उनके बल और प्रतापको उद्बोधित कर देता है।'

अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते।

—वाल्मीकिरामायण

'वीरवर ! बिना अपराधके ही किसीको मारना संसारके लोग अच्छा नहीं समझेंगे।'

श्रीसीताजीके इन सिद्धान्तयुक्त वचनोंसे स्पष्ट है कि वे साधारण पत्नीमात्र ही नहीं थीं; बल्कि प्राणिमात्रके कल्याण-हेतु चारों धर्मों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का पूर्ण अध्ययन किये हुए थीं और समयानुसार अपनी प्रज्ञाका प्रयोग भी करती थीं, जिससे उनके धर्मकी हानि न हो।

शूर्पणखा-काण्ड तथा खर-दूषण आदि राक्षसोंके वधके उपरान्त स्थितिपर विचारकर श्रीराम मायारूपिणी जगज्जननीसे कहते हैं—

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥

—मानस

इस प्रकार अग्निमें प्रवेश कर जानेपर मायाकी सीतामें वह विशेषता नहीं रह गयी, जो पराशक्तिरूपिणी श्रीसीता मातामें थी और जिसका प्रदर्शन उन्होंने जनकपुरीमें महाराज दशरथके आगमनके समय किया था—

जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥

—मानस

श्रीसीताजीके इस रूपमें भी शील, रूप और विनीत व्यवहार उपस्थित हैं, क्योंकि वे भगवान् श्रीरामकी आह्लादिनी शक्ति भी तो हैं।

(शेष अगले अङ्कमें)

अर्थ या अनर्थ ?

[धनपर एक समीक्षात्मक दृष्टि]

(एक त्यागी संतके आदेशानुसार लिखित)

सामान्य दृष्टिमें धन बड़ा ही आकर्षक पदार्थ है। साहित्यमें भी धनकी प्रचुर प्रशंसा है। भारतको छोड़कर प्रायः दूसरे देशोंके साहित्यमें इसकी समीक्षा प्रायः नहीं मिलती; किंतु अपने यहाँ इसके उभयात्मक पक्षोंपर पूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। एक ओर जहाँ इसे पुरुषार्थोंमें प्रथम स्थान दिया गया है और भगवान् श्रीकृष्ण तथा देवर्षि नारदतकके—

धनमूलाः क्रियाः सर्वा यत्नस्तस्यार्जने मतः।

—जैसे वचन प्राप्त होते हैं, वहाँ दूसरी ओर **'धिगर्थान् क्लेशकारिणः' 'धिग् धिग्धनं तद् बहु'** जैसे वचन भी प्राप्त होते हैं। यहाँ संक्षेपमें उसके उभयात्मक पक्षोंपर विचार करते हुए अन्तमें उसके आवश्यक शुद्ध रूप तथा अर्जन-प्रणालीपर भी विचार प्रस्तुत किया जायगा।

तत्त्वज्ञोंकी दृष्टि

वास्तवमें ज्ञान-वैराग्यपूर्ण तत्त्व-चिन्तकोंकी शुद्ध सत्त्वमयी दृष्टि ही मान्य एवं यथार्थ दृष्टि है। उनके मतसे तो धनमात्र ही हेय तथा अशुद्ध है। उनके मतसे तो—

अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यदर्थनिचयो महान्।

(पद्म० स्वर्ग० ५७। ७१)

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च॥
यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः।
लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम्॥
अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥
भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः॥
अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्॥
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान्।
द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि॥

(११। २३। १५–२१, २३)

"प्रायः देखनेमें आता है कि कृपणोंको धनसे कभी सुख नहीं मिलता। यहाँ तो वे धन कमाने और उसे बचानेकी चिन्तासे जलते रहते हैं और मरनेपर (धनके लिये किये हुए पापोंके कारण) नरकमें गिरते हैं। जैसे थोड़ा-सा सफेद कोढ़ सुन्दर रूपको बिगाड़ देता है, वैसे ही तनिक-सा भी लोभ यशस्वियोंके शुद्ध यश और गुणोंके प्रशंसनीय गुणोंको नष्ट कर देता है। धनके कमानेमें, कमा लेनेपर उसके और बढ़ानेमें, उसकी रक्षामें, खर्च करनेमें, नाश और उपभोगमें सदा ही परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रमसे ग्रस्त रहना पड़ता है। चोरी, हिंसा, असत्य-भाषण, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेद-बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये पंद्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनके कारण ही माने गये हैं। इसलिये कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह स्वार्थ और परमार्थके विरोधी इस 'अर्थ' नामक 'अनर्थ' का दूरसे ही त्याग कर दे। भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी—जो स्नेहबन्धनमें बँधे बिल्कुल एक बने रहते हैं, वे ही (धनके लोभसे) एक-एक कौड़ीके लिये इतने मन-फटे हो जाते हैं कि तुरंत एक-दूसरेके वैरी बन जाते हैं। वे थोड़े-से धनके लिये भी क्षुब्ध और क्रुद्ध हो जाते हैं, सारा सौहार्द-सम्बन्ध क्षणोंमें छोड़ देते हैं और द्रोह रखते हुए एक-एकके प्राण लेने-देनेपर उतारू हो जाते हैं और परस्पर सर्वनाश कर डालते हैं। यह मनुष्य-शरीर मोक्ष और स्वर्गका द्वार है, इसे प्राप्त करके भी कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष है जो अनर्थोंके धाम इस 'अर्थ'—धनमें आसक्त रहे ?"

जानत अर्थ अनर्थ रूप तम कूप परब एहि लागे।
उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायो॥*

(विनयपत्रिका)

---

* गोस्वामीजीका यह कथन सम्भवतः पञ्चम वेद महाभारत शान्तिपर्व १७७। २०—४० के आधारपर है।

मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो
विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ।
(श्रीमद्भागवत ८ । २२ । १६)

तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ।
(श्रीमद्भागवत १० । २७ । १६)

ब्रह्मन् ! यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ।
(श्रीमद्भागवत ८ । २२ । २४)

हरिष्ये तद्धनं शनैः । (श्रीमद्भागवत १० । ८८ । ८)

तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ।
(श्रीमद्भागवत १० । ६० । १४)

नमोऽकिंचनवित्ताय ।

—इत्यादि तत्त्वज्ञोंके विशुद्ध सात्त्विक वचनोंके अनुसार धन सर्वश्रेयोविघातक तथा भक्ति-ज्ञान आदिका बाधक ही सिद्ध होता है ।

स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम् ।
(नारदभक्तिसूत्र)

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।
(श्रीमद्भागवत १० । १० । १७)

तद्धि तस्य परं तपः ।

'परम अकिंचन प्रिय हरि केरे ।'
'एहि दरबार दीन को आदर ।'

—आदिमें अकिंचनताको ही सुखकर माना है । वैराग्यके विशुद्ध आनन्दोद्रेकमें आकर सर्वश्री भर्तृहरि, जैनकवि पद्मानन्द, अप्पय्य याजी दीक्षित तथा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने विभिन्न वैराग्य-संदीपनी आदि स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे थे, उनके उन दूसरे ग्रन्थोंमें भी शतशः वैराग्यसूक्तियाँ भरी हैं । श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें भिक्षुगीत आदि अनेक वैराग्यपूर्ण गीताएँ हैं । अकेले महाभारतके शान्तिपर्वमें ही इस प्रकारकी प्रायः बीस गीताएँ हैं । जिनमें शम्पाकगीता, मङ्किगीता, बोध्यगीता, अश्मगीता आदि तो विशुद्ध धननिन्दापरक ही हैं । यहाँ उनमेंसे कुछके ही सारभूत वचन दिये जा रहे हैं ।

विविध गीतासार

शान्तिपर्वमें शम्पाकका कथन है—

अकिंचनः सुखं शेते समुत्तिष्ठति चैव ह ।
आकिंचन्यं सुखं लोके पथ्यं शिवमनामयम् ॥
अनमित्रपथो ह्येष दुर्लभः सुलभो मतः ।
अकिंचनस्य शुद्धस्य उपपन्नस्य सर्वतः ॥
अवेक्षमाणस्त्रींल्लोकान् न तुल्यमिह लक्षये ।
आकिंचन्यं च राज्यं च तुलया समतोलयम् ।
अत्यरिच्यत दारिद्र्यं राज्यादपि गुणाधिकम् ॥
आकिंचन्ये च राज्ये च विशेषः सुमहानयम् ।
नित्योद्विग्नो हि धनवान् मृत्योरास्यगतो यथा ॥
नैवास्याग्निर्न चारिष्टो न मृत्युर्न च दस्यवः ।
प्रभवन्ति धनत्यागाद् विमुक्तस्य निराशिषः ॥
तं वै सदा कामचरमनुपस्तीर्णशायिनम् ।
बाहूपधानं शाम्यन्तं प्रशंसन्ति दिवौकसः ॥
धनवान् क्रोधलोभाभ्यामाविष्टो नष्टचेतनः ।
तिर्यगीक्षः शुष्कमुखः पापको भ्रुकुटीमुखः ॥
निर्दशन्नधरोष्ठं च क्रुद्धो दारुणभाषिता ।
कस्तमिच्छेत्परिद्रष्टुं दातुमिच्छति चेन्महीम् ॥
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानं ततस्ततः ।
प्रतिषेधन्ति राजानो लुब्धा मृगमिवेषुभिः ॥
नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम् ।
नात्यक्त्वा चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव ॥
(१७६ । ७—१५, १९, २२)

अर्थात् इस संसारमें अकिंचनता ही आनन्दकर है । अकिंचन व्यक्ति सुखसे सोता तथा जागता है । आकिंचन्य बड़ा मङ्गलमय, सुखकर, अनामय, निरापद तथा निष्कण्टक मार्ग है । यदि तीनों लोकोंपर शुद्ध दृष्टि डालकर देखा जाय तो अकिंचन एवं विशुद्ध विरक्त पुरुषकी तुलनामें कोई भी नहीं दीखता । तराजूपर तौले जानेपर राज्य भी इसके सामने तुच्छ होता है; क्योंकि धनवान् पुरुष प्रायः सदा इस प्रकार घबराया रहता है, मानो वह मौतके ही मुँहमें पड़ा हो । पर जो धनका मोह छोड़कर सर्वथा निश्चिन्त हो गया है, उसे आग, पानी, ग्रह, दुःख, चोर या मौतका भी कोई भय नहीं रह जाता । उस सदा स्वच्छन्द गतिसे चलनेवाले तथा बाहुके सहारे बिना बिछावनके ही सो जानेवाले व्यक्तिकी देवता भी पूजा-स्तुति करते हैं ।

इधर धनवान् व्यक्ति क्रोध तथा लोभका मारा हुआ सदा बेहोश रहता है । उसका मुँह सूखा, आँख टेढ़ी तथा भौंहें तनी रहती हैं । वह क्रोधसे ओठ काटता तथा कटु भाषण करता रहता है । अधिक क्या, वह यदि सारी पृथ्वी भी देनेको तैयार हो जाय तो उसकी ओर देखनेका मन नहीं होता ।

शान्तिपर्वके २६ वें अध्यायमें ययातिगीता तथा यज्ञगीता आती हैं। इन्हींके प्रसङ्गमें युधिष्ठिरने कहा था—

यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा
धनं न कामाय हितं प्रशस्तम् ॥
धनहेतोर्य ईहेत तस्यानीहा गरीयसी ।
ये वित्तमभिपद्यन्ते सम्यक्त्वं तेषु दुर्लभम् ।
द्रुह्यतः प्रैति तत्प्राहुः प्रतिकूलं यथातथम् ॥
अल्पेन तृषितो द्रुह्यन् भ्रूणहत्यां न बुध्यते ॥
देवस्वमुपगृह्यैव धनेन न सुखी भवेत् ॥
(शान्ति० २६ । २५, १८, २०, २१, २३)

अर्थात् धन यज्ञ-दानादिके लिये है, उपभोगके लिये नहीं। जो धनके पीछे पड़े हुए हैं, उनमें सौजन्य नहीं रह सकता; क्योंकि बिना द्रोहादि अधर्म—पापके कोई भी धनी नहीं हो सकता। लोभी मनुष्य तनिक-तनिक धनके लिये भ्रूणहत्या-जैसे पापको भी करनेमें नहीं हिचकता।

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम् ।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥
(यह श्लोक महाभारतमें पाँच बार आया है)
दृश्यते हि युवैवेह विनश्यन् वसुमान्नरः ।
अकिंचनाश्च दृश्यन्ते पुरुषाश्चिरजीविनः ॥
प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः ॥
(शान्ति० २८ । २७—२९)

इसी पर्वमें धनाशासे निर्विण्ण मङ्किकी गाथा बड़ी सुन्दर है। मङ्कि ब्राह्मणने धन-प्राप्तिके लिये बार-बार व्यापार, नौकरी, मन्त्राराधन, देशाटन तथा रसायन एवं निधिविद्या आदिके प्रयोग किये। उन सबके व्यर्थ होनेपर वे बैलोंकी एक जोड़ी खरीदकर खेती करने चले। रास्तेमें एक ऊँट बैठा था। बैल उसके दोनों बगलसे होकर जाने लगे। इतनेमें ऊँट भड़ककर खड़ा हो गया। अब दोनों बैल उसके दोनों कंधोंपर आ गये और वह घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगा। इसी बीच बैलोंके मर जानेसे मङ्कि महाराजकी सारी पूँजी समाप्त हो गयी और वे स्तब्ध तथा निर्विण्ण होकर कहने लगे—

मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम ।
शुद्धं हि दैवमेवेदं हठेनैवास्ति पौरुषम् ॥
मा मां योजय लोभेन वृथा त्वं वित्तकामुक ॥
नूनं ते हृदयं काम वज्रसारमयं दृढम् ।
यदनर्थशताविष्टं शतधा न विदीर्यते ॥
ईहा धनस्य न सुखा लब्ध्वा चिन्ता च भूयसी ।
लब्धनाशो यथा मृत्युर्लब्धं भवति वा न वा ॥
धने सुखकला या तु सापि दुःखैर्विधीयते ॥
धनमस्येति पुरुषं पुरो निघ्नन्ति दस्यवः ।
क्लिश्यन्ति विविधैर्दण्डैर्नित्यमुद्वेजयन्ति च ॥
अर्थलोलुपता दुःखमिति बुद्धं चिरान्मया ।
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥
—इत्यादि
(वही अ० १७७ का सारांश)*

इसी प्रकार आश्वमेधिकपर्वमें महाराज अम्बरीषकी गायी हुई गाथा है। राजा अम्बरीष सभी दोषोंपर विजय प्राप्त कर चुके थे, किंतु राजा होनेके कारण उनमें स्वाभाविक लोभांश रह गया था। उनका कहना था—

भूयिष्ठं विजिता दोषा निहताः सर्वशत्रवः ।
एको दोषो वरिष्ठश्च वध्यः स न हतो मया ॥
यत्प्रयुक्तो जन्तुरयं वैतृष्ण्यं नाधिगच्छति ।
तृष्णार्त इह निम्नानि धावमानो न बुध्यते[1] ॥
अकार्यमपि येनेह प्रयुक्तः सेवते नरः ।
स लिप्स्यमानो लभते भूयिष्ठं राजसान् गुणान् ॥
तदवाप्तौ तु लभते भूयिष्ठं तामसान् गुणान् ।

* काम ! तू अब मुझे व्यर्थ धनके लोभमें न डाल। तेरा हृदय निश्चय ही अत्यन्त दृढ़ वज्र-जैसा बना हुआ है, तभी तो तू सैकड़ों भयङ्कर अनर्थोंसे परिपूर्ण होनेपर भी शतधा विदीर्ण नहीं हो जाता। धनेच्छामें दुःख, उसके मिलनेपर रक्षा आदिकी सैकड़ों चिन्तायें, फिर नष्ट हो जानेपर तो मौत भी तुच्छ जान पड़ती है। धनमें जो सुखका नाम या लेश है, वह बड़े ही दुःखसे सम्पन्न होता है। धनीको डाकू आदि बड़ी पीड़ा देकर सामने ही मार डालते हैं अतः धनेच्छा घोर दुःख है।

१. मैंने बहुत-से दोषोंपर विजय पायी और शत्रुओंको भी नष्ट कर डाला; किंतु जो सबसे बड़ा दोष लोभ है, वह तो अभी रह ही गया। इस लोभके कारण ही प्राणीको वैराग्य नहीं होता। लोभीकी प्रवृत्ति सदा अशुद्ध कर्मोंकी ओर होती है और इससे मद, तृष्णा आदि अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

स त्रैगुण्यैः संहृतदेहबन्धनः
पुनः पुनर्जायति कर्म चेह ते ।
जन्मक्षये भिन्नविकीर्णदेहो
मृत्युं पुनर्गच्छति जन्मनैव ॥
(महा० आश्वमेधिक० ३१ । ७-११)

'इच्छति शती सहस्रम्'

इसी तरह आदिपर्वमें ययातिराजाकी एक बिस्तृत गाथा है, जिसका एक वचन इस प्रकार है—

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य पर्याप्तं इति मत्वा शमं व्रजेत् ॥[1]
(महा० आदिपर्व ८५ । १३)

ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्डमें देवराज इन्द्रकी एक गाथा है, जिसका सार अंश इस प्रकार है—

ऐश्वर्यं विपदां बीजं प्रच्छन्नाज्ञानकारणम् ।
मुक्तिमार्गार्गलं दार्ढ्यं हरिभक्तिव्यपायकम् ॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकदुःखाङ्कुरं परम् ।
सम्पत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति ॥[2]
(प्रकृतिख० ३६ । ४७-४९)

इस विषयमें महाभारत शान्तिपर्व २७१वें अध्यायमें भी एक बड़ी सुन्दर कथा आती है । इसमें कहा गया है कि एक बार एक निर्धन ब्राह्मणने धन-प्राप्तिकी कामनासे कुण्डधार मेघकी आराधना की । पूजाके बाद थक जानेसे उस ब्राह्मणको वहीं कुशासनपर निद्रा आ गयी । उसने स्वप्नमें मणिभद्र नामक यक्षको देवताओंके सामने अनेक पदार्थ बाँटते हुए देखा । इतनेमें ही उस ब्राह्मणका आराध्य मेघ भी उस यक्षके सामने आकर लेट गया । मणिभद्रने उससे कहा कि 'दण्डधार ! तुम क्या चाहते हो ?' मेघने कहा कि 'यह ब्राह्मण हमारा भक्त है । यदि आप तथा देवतालोग मुझपर प्रसन्न हैं, तो इसपर भी कुछ कृपा कराना चाहता हूँ, जिससे इसे भी कुछ प्राप्त हो जाय ।' पितर-देवताओंकी सम्मति पाकर मणिभद्र उस मेघसे कहने लगा कि 'मेघ ! उठो, उठो, तुम्हारा काम बन गया है । इसे तुम जितना भी धन दिलाना चाहते हो, दिला दो ।' किंतु कुण्डधार कहने लगा 'नहीं, मैं अपने भक्तको संतोषभरी पृथ्वी या कोई विशाल धनराशि नहीं देना चाहता, मैं तो यही चाहता हूँ कि यह धार्मिक हो जाय तथा इसकी बुद्धि एकान्त तपमें लग जाय ।'

धर्मप्रधानो भवतु ममैषोऽनुग्रहो मतः ॥ (२७१ । २६)

जगनेपर ब्राह्मणको वैराग्य हो गया । अब वह वनमें रहकर निरन्तर तप करने लगा । कठोर तप करनेके बाद उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी । बादमें उसे वह शक्ति भी प्राप्त हो गयी जिसे किसीको कह देनेपर राज्य आदि भी मिल जाता । इसी बीच एक दिन कुण्डधार उसके सामने प्रकट होकर कहने लग गया—'ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम्हें निर्मल दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है । अब तुम इनके द्वारा प्राप्त होनेवाली राजाओं तथा धनियोंकी दुर्गति तथा विविध लोकोंको भी देख लो ।' ब्राह्मणने देखा कि हजारों राजा भीषण नरकमें पड़े हुए हैं । कुण्डधारने कहा कि 'एक बार तुम पुनः इन्हें भली प्रकार देख लो । भला कहो, यदि तुम्हारी पूजाके बदलेमें यदि तुम्हें धन दिलाकर इसी प्रकार मैं दुर्गतिमें डाल देता तो तुम्हारा क्या उपकार होता ? पता नहीं, प्राणी भोगोंकी लालसा क्यों करता है ? इससे उसके लिये स्वर्गका द्वार तो सदाके लिये ही बंद ही हो जाता है ।'

स्वर्गद्वारं हि संरुद्धं मानुषेषु विशेषतः ॥
(२७१ । ४६)

बाइबिल न्यू टेस्टामेन्ट मैथ्यू १९ । २४ का—'It is easier for a camel to go through the eye of a needle than for a rich man to enter into the kingdom of heaven."*

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय ।
वह खाये बौरात जग यह पाये बौराय ॥

१. पृथ्वीमें जितना भी अन्न, धन, सुवर्ण, पशु एवं स्त्रियाँ आदि हैं, वे तो एक व्यक्तिके भी लोभ या तृष्णाको दूर या तृप्त करनेमें समर्थ अथवा पर्याप्त नहीं हैं (अर्थात् तृप्तिका मार्ग तृष्णापूर्ति या भोगाभ्यास नहीं; भोग-तृष्णादिका त्याग है), अतः उपशमको ही प्राप्त होना चाहिये ।

२. ऐश्वर्य सारी विपत्तियोंका बीज है । वह प्रच्छन्न अज्ञानका कारण तथा मुक्तिमार्गके द्वारका तो दृढ साँकल ही है । भगवद्भक्तिको तो वह समाप्त ही कर देता है । धन जन्म, मरण, जरा, रोग, शोक तथा अन्यान्य सभी क्लेशोंका अङ्कुर है । सम्पत्तिरूप अँधेरेमें पड़ा हुआ बेचारा अन्धा मुक्तिमार्गको किसी भी प्रकार देख नहीं पाता ।

* सूईके छेदमेंसे ऊँट चाहे निकल जाय, पर धनी आदमीका स्वर्ग-(भगवद्-) राज्यमें प्रवेश तो उसकी अपेक्षा भी बहुत कठिन है

(बहुतोंका यह अनुमान है कि ईसाने भारतसे ही शिक्षा पायी थी ।)

यह बचन भी इसका अनुवादमात्र है, बादमें उस ब्राह्मणको जल, आकाश आदिमें चलनेकी शक्ति तथा संकल्पसिद्धि भी प्राप्त हो गयी और उसे धर्ममें महान् आनन्द आने लगा ।

प्रतिग्रह भी दोषपूर्ण

मनु आदि तत्त्ववेत्ताओंने प्रतिग्रह (दान लेने) को भी दोषयुक्त बतलाया है । वे कहते हैं—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥
न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ।
प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥
हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान् घृतम् ।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥
हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ।
अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥
अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥
(मनुस्मृति ४ । १८६—१९०)

अर्थात् दान लेनेमें जो व्यक्ति तप-विद्यादिसे समर्थ हो, उसे भी दान नहीं लेना चाहिये; क्योंकि दान लेनेसे उसका ब्राह्मतेज तुरंत नष्ट होने लगता है और मूर्ख व्यक्ति तो दान लेकर पत्थरकी नावपर चढ़ने-जैसे उसीके साथ डूब ही जाता है । सोनेका दान लेना आयु-नाशक, अन्न, पृथ्वी, गौका प्रतिग्रह शरीरको, अश्वका प्रतिग्रह नेत्रको, वस्त्रका दान-ग्रहण चमड़ीको, घीका तेजको तथा तिलका प्रजा-संततिको नाश करता है । जैन विद्वान् श्रीसोमप्रभाचार्यने भी अपनी सूक्ति-मुक्तावलीमें प्रतिग्रहकी बड़ी आलोचना की है । वे इसे सभी दोषोंकी जड़ बतलाते हैं—

कलहकलभविन्ध्यः क्रोधगृध्रश्मशानं
व्यसनभुजगरन्ध्रं द्वेषदस्युप्रदोषः ।
सुकृतवनदवाग्निर्मार्दवाम्भोदवायु-
र्नयनलिनतुषारोऽत्यर्थमर्थानुरागः ॥४२॥
निःशेषधर्मवनदाहविजृम्भमाणे
दुःखौघभस्मनि विसर्पदकीर्तिधूमे ।
बाढं धनेन्धनसमागमदीप्यमाने
लोभानले शलभतां लभते गुणौघैः ॥४५॥

गुन सागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ भल कहै न कोऊ ॥
जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥

'लोभः प्रतिष्ठा पापस्य' आदि ।

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय १९, स्कन्दपुराण नागर-खण्ड अध्याय ३२ तथा महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय ९३ में प्रायः एक ही प्रकारके श्लोकोंमें सप्तर्षियोंके प्रतिग्रह-वैमुख्यका एक बड़ा सुन्दर प्रसंग प्राप्त होता है । एक बार सारे विश्वमें बड़ा भीषण अकाल पड़ गया था । उस समय सभी बड़े कष्टमें पड़ गये थे । उस समय वृषादर्भी नामका एक राजा बड़ा सम्पन्न था । उसने क्षुधापीड़ित सप्तर्षियोंको दान देना चाहा । उनके अस्वीकार करनेपर उसने उनके मार्गमें गूलरके फलोंमें अशर्फियाँ छिपाकर रखवा दीं । पर महर्षि अत्रि उनमेंसे एकके उठाते ही उसका वजन देखकर राजाकी करतूतको भाँप गये । उन्होंने कहा कि 'मैं गूलरका वजन भलीभाँति समझता हूँ । इसमें अवश्य ही सोना भरा हुआ है । एक तो प्रतिग्रह ही बड़ा भयानक है । दूसरे राजाका प्रतिग्रह तो अत्यन्त घोर होता है । फिर वह यदि धार्मिक न हुआ तो कहना ही क्या ? ब्राह्मणोंका तो धर्मानुष्ठानके लिये भी किया गया प्रतिग्रह अनुचित है; क्योंकि कीचड़में हाथ सानकर उसे धोनेसे कीचड़का न लगाना ही भला है ।'

धर्मार्थमपि विप्राणां संचयोऽर्थस्य गर्हितः ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥
(पद्म० सृष्टि० १९, २३०; स्कन्द० नागर० ३२, ३८; महाभारत अनु० ९३, ३३; पंचतन्त्र २, १६५; हितोपदेश १ । १८१)

इसी प्रसङ्गमें महर्षि कश्यपने तो यहाँतक कह दिया था कि धनसे प्राप्त होनेवाला धर्म भी क्षयिष्णु तथा सामान्य है । वास्तविक धर्म तो तप तथा ज्ञानादिके द्वारा ही प्राप्त होता है । मोक्ष भी उसीसे साध्य है—

योऽर्थे न साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः ।
यः पुनस्तपसा साध्यः स मोक्षायेति मे मतिः ॥

इसके बाद उदाहरणमें सक्तुप्रस्थीय मुद्गल ब्राह्मणका उदाहरण दिया जा सकता है । जिसके स्वल्प सत्तूमें सन-कर नेवलेका वर्ण सोनेका हो गया था, किंतु महाराजा युधिष्ठिर-जैसे हरिदासवर्य तथा अजातशत्रु राजाके महान्

यज्ञके अवशेषांशोंमें लाख बार लोटनेपर भी उसे कोई लाभ नहीं हो रहा था। पद्मपुराण स्वर्गखण्डका तो यहाँतक कथन है कि धनके लोभ तथा प्रतिग्रहके चक्करमें पड़ा हुआ ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है। साथ ही उसका ब्राह्मणत्व भी समाप्त हो जाता है, जो किसी अन्य प्रकारसे प्रायः नहीं नष्ट होता।

वृत्तिसंकोचमेवेच्छेन्नेहेत धनविस्तरम्।
धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥
वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः।
न तां गतिमवाप्नोति संतोषाद्यामवाप्नुयात्॥
प्रतिग्रहरुचिर्न स्याच्छूद्रान्न तु समाहरेत्।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्॥

(आनन्दाश्रम पूनाका संस्करण ५७। ७०—७२)

लक्ष्मी तथा दरिद्राका एक विचित्र संवाद

धनसे होनेवाले दोषोंके सम्बन्धमें ब्रह्मपुराणमें एक लक्ष्मी तथा दरिद्राका विचित्र संवाद प्राप्त होता है। यद्यपि संवादके अन्तमें भगवती गोदावरीद्वारा लक्ष्मीको ही विजयश्री प्रदान की गयी है तथापि धनसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको आँखें खोलकर यहाँ देख लेना भला ही होगा। इसमें दरिद्रा देवीका कहना था—

कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च।
यत्राहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन॥
सुखं न तादृक् त्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यथा गुरुः।
न तथा जायते पुंसां सुरया दारुणो मदः।
त्वत्संनिधानमात्रेण यथा वै विदुषामपि॥
सदैव रमसे लक्ष्मीः प्रायस्त्वं पापकारिषु।
अहं वसामि योग्येषु धर्मशीलेषु सर्वदा।
शिवविष्ण्वनुरक्तेषु कृतज्ञेषु महत्सु च॥
सत्सु विद्वत्सु शूरेषु कृतबुद्धिषु साधुषु।
ब्राह्मणेषु शुचिष्मत्सु व्रतचारिषु भिक्षुषु॥
निर्भयेषु वसिष्यामि लक्ष्मीस्त्वं शृणु ते स्थितिम्।
राजवर्तिषु पापेषु निष्ठुरेषु खलेषु च॥
पिशुनेषु च लुब्धेषु विकृतेषु शठेषु च।
अनार्येषु कृतघ्नेषु धर्मघातिषु सर्वदा॥
मित्रद्रोहिष्वमित्रेषु भग्नचित्तेषु वर्तसे।

(अ० १३७। ६। २४)*

उपसंहार

यहाँ बहुत संक्षेपमें ही विशिष्ट स्थलोंका सार-सार संगृहीत है। विभिन्न वैराग्यशतकोंका तो कोई अंश भी नहीं लिया गया। इन्हें मूलग्रन्थोंमें ही देख उनसे लाभ उठाकर सदा संतुष्ट रहनेका प्रयत्न करना चाहिये। शास्त्रोंका तात्पर्य मनुष्यको शोक-मोह, चिन्ता-दुःखसे मुक्त कर पूर्ण शान्ति प्रदान करनेमें ही है। अतः अकिञ्चन व्यक्तिको परम प्रसन्न होकर अपना सौभाग्य मानना चाहिये तथा अपनेको भगवत्कृपाका विशेष पात्र और बहुत ही भाग्यशाली मानकर विशेष भजन करना चाहिये। जब दीनबन्धु उसके सच्चे बन्धु हो जाते हैं, तब उसे भला और क्या चाहिये? शास्त्रोंके अनुसार दीन-हीन-अकिञ्चनको दानादि न दे सकनेका प्रत्यवाय भी नहीं प्राप्त होता। उसका स्वाभाविक जीवन ही परम तपोमय माना जाता है—

कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः।

(श्रीमद्भागवत १०। १९। १९)

और यदि वह एक कौड़ीका भी दानादि करता है, तो उसकी महान् महिमा होती है; क्योंकि उसमें त्याग होता है। सक्तुप्रस्थीय मुद्गलादिके धर्मकार्य इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

धनमें महान् दुर्गुण और दोष भरे हैं, परंतु धनके बिना आजकल जीवन-निर्वाह कठिन हो गया है। इसलिये धन कमाना आवश्यक होनेपर भी अन्याय, असत्य, चोरी,

---

* जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ काम, क्रोध, मद, मात्सर्य आदि दोष नहीं पनप सकते। लक्ष्मी देवी! तुम्हारी प्राप्तिमें जितना हर्ष नहीं होता, उससे अधिक क्लेश होता है और चले जानेपर जो पश्चात्ताप होता है, उसका क्या कहना। मेरा निवास तो शिव-विष्णुके भक्तों, ब्रह्मचारी, संन्यासी, साधु-संतों, विद्वानों, शूरों तथा पवित्र ब्राह्मणोंमें ही होता है, जो तुम्हारा स्पर्श भी नहीं करते, पर तुम तो प्रायः कृपण, शठ, खल, दुष्ट, निन्दक, लोभी, कुटिल, कृतघ्न, धर्मघाती, मित्रद्रोही तथा चुगलखोर राजसेवियोंके पास ही रहती हो।

तुलसीदासजी कहते हैं—

रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन इव नर बड़भागी॥

रामप्रेमी बड़भागी मनुष्य लक्ष्मीके विलासका वमनकी भाँति त्याग कर देते हैं, वे उसकी ओर झाँकते भी नहीं।

परापहरण आदिका आश्रय न लेकर सदा सत्यतापूर्वक धर्मसम्मत मार्गसे शुद्ध धनार्जनका प्रयत्न करना चाहिये। जिनके पास धन है, उनको धनका स्वामी अपनेको न मानकर भगवान्‌का सेवक मानना चाहिये और धनपर भगवान्‌का ही स्वामित्व मानते हुए ईमानदार सच्चे सेवककी भाँति उसे भगवान्‌की सेवामें ही लगाना चाहिये। धनहीन गरीबोंको तुच्छ न मानकर उन्हें भगवत्स्वरूप मानते हुए भगवद्‌बुद्धिसे ही उनकी सत्कारपूर्वक धनादिके द्वारा सेवा करनी चाहिये। श्रीमद्भागवतमें आये हुए देवर्षि नारदजीके इन शब्दोंको याद रखना चाहिये—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भागवत ७। १४। ८)

'जितनेसे अपना पेट भरे केवल उतने ही धनपर मनुष्यों-का अधिकार है, इससे अधिकको जो अपना मानता है, वह चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये।'

नाम-साधनापर एक दृष्टि

(लेखक—पं० श्रीजयकान्तजी झा)

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः।
गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीरबिन्दुभिः॥

(गरुडपुराण)

'हे मनुष्य! प्रदीप्त पापाग्निको देखकर भय मत करो। गोविन्दनामरूप मेघोंके जलबिन्दुओंसे इसका नाश हो जायगा।'

हम अटल, अखण्ड और आत्यन्तिक सुख चाहते हैं, परंतु सुखकी मूलभित्ति धर्मका सर्वनाश करनेपर तुले हुए हैं। ऐसी स्थितिमें सुखके स्वप्नसे भी जगत्‌को निराश रहना पड़ता है। हमारी इस दुर्दशाको महापुरुषों और भगवद्भक्तोंने पहलेसे ही जान लिया था, इसीसे उन्होंने दया-परवश हो हमारे लिये एक ऐसा उपाय बतलाया जो इच्छा करनेपर सहजहीमें काममें लाया जा सकता है; परंतु जिसका वह महान् फल होता है जो पूर्वकालमें बड़े-बड़े यज्ञ, तप और दानसे भी नहीं होता था, वह है श्रीहरिनामका जप, कीर्तन और स्मरण। वेदान्तदर्शनके निर्माता भगवान् वेदव्यासरचित श्रीमद्भागवतमें ज्ञानिश्रेष्ठ शुकदेवजी महाराज शीघ्र ही मृत्युको आलिङ्गन करनेके लिये तैयार बैठे हुए राजा परीक्षित्‌से पुकारकर कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

'हे राजन्! इस दोषोंसे भरे कलियुगमें एक महान् गुण यह है कि केवल श्रीकृष्णके नाम-कीर्तनसे ही मनुष्य कर्म-बन्धनसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त कर सकता है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंसे और द्वापरमें परिचर्यासे जो पद प्राप्त होता था, वही कलियुगमें केवल श्रीहरिनाम-कीर्तनसे प्राप्त होता है।'

भगवन्नाममें सर्वार्थ-साधनकी क्षमता निहित है। श्रद्धा, भक्ति और ऐकान्तिक निष्ठाके साथ उस नामका जप करते-करते क्षमताका विकास होता है। भोजन करते समय जैसे ध्यान रहता है व्यञ्जनकी ओर, स्वाद-की ओर, किंतु प्रत्येक ग्रासके साथ-ही-साथ क्षुधानाश, देह और इन्द्रियोंकी शक्तिवृद्धि तथा स्वादका सुख—तीनों अपने-आप मिलते जाते हैं, उसी प्रकार नाम-जपके समय चित्त तो संलग्न रहता है नाम-नामीके अभिन्नस्वरूप मन्त्रमें, किंतु प्रतिबारके नामोच्चारणके साथ-ही-साथ अलक्षित रूपमें अनित्य विषय-भोग-वैराग्य, नित्य

सत्य चिदानन्दस्वरूप मन्त्रात्मा भगवान्में प्रेमभक्ति एवं सर्वार्थसिद्धिमयी भगवदनुभूति और तज्जनित अतीन्द्रिय सुख हृदयके अंदर विकास पाता रहता है। भोजनके फलस्वरूप ग्रास-ग्रासमें पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति इत्यादिके सम्पन्न होते रहनेपर भी जैसे वे प्रतिग्रासमें दिखायी नहीं देते—अनेक ग्रासोंका फल संचित होनेपर ही पता लगता है, उसी प्रकार नाम-जपके अत्याश्चर्यजनक फल-को भी प्रतिबारके नामोच्चारणके साथ-साथ अस्वच्छबुद्धि साधक समझनेमें समर्थ नहीं होता। दीर्घकालके निरन्तर साधनसे अन्तःकरणमें संचित आध्यात्मिक सम्पत्ति अपनी ज्योतिसे ऊपरी मलको दग्ध करके बुद्धि और हृदयके सम्मुख जब प्रकाशित होती है तभी इसका अनुभव होता है। बुद्धि और हृदय जब स्वच्छ हो जाते हैं, तभी नाम-के भीतर निहित अचिन्त्य भाव-सम्पत्तिका प्रतिबारके नाम-स्मरणमात्रमें आस्वाद प्राप्त होने लगता है।

नाममें अक्षर-बुद्धि रखना शास्त्रोंमें महान् अपराध माना गया है। नाम प्राणवान् होता है और होता है आध्यात्मिक तेजका आधार। साधक जितना ही दिन-पर-दिन, क्षण-पर-क्षण नामकी सेवा करता रहता है, उतना ही नामका माहात्म्य साधकके विशोधित अन्तः-करणमें प्रकाशित होता रहता है एवं नाम-निहित शक्ति साधकके अंदर ज्ञान, भाव, रसादि ऐश्वर्योंको स्वयं प्रकट करके साधकको कृतार्थ कर देती है। साधकको सर्वाङ्गीण कल्याणपर पहुँचानेके लिये जिन-जिन वस्तुओंका प्रयोजन होता है, वे सभी नाम-साधनासे सुलभ हो जाती हैं। शास्त्रीय विचारके द्वारा नाम-तत्त्वको हृदयङ्गम करके उसकी अचिन्त्य शक्तिमें अविचल विश्वास रखना आवश्यक होता है। ऐसी धारणा बनाये रखनी चाहिये कि नाम और नामी दोनों एक-मूर्ति हो नामरूप चिन्मय देह धारण करके अपनी कृपासे हमारे हृदयमें विराजमान हैं, अतः सर्वदा सतर्क, अप्रमत्त और भक्तिपूत-चित्त होकर उनकी सेवामें सम्पूर्ण शक्तियोंका लगाना ही हमारा कर्तव्य है। नित्य-निरन्तर प्रेमके साथ नाम-स्मरण-चिन्तन एवं निदिध्यासन ही हमारा अभीष्ट होना चाहिये। यही नाम-साधना है। इसीसे सर्वार्थसिद्धि होती है।

'जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्न संशयः।'

नामके उच्चारण या स्मरणमात्रसे नामीका स्वरूप चित्तपटपर उदित होता है। अतः नामका अर्थ है 'नामी'। नामीके स्वरूपके साथ जितना घनिष्ठ परिचय संस्थापित होता है, नामका अर्थ उतना ही स्पष्ट होता जाता है। नामका विश्लेषण करके उसके प्रत्येक अक्षर और प्रत्येक मात्राके अर्थ एवं उनकी समष्टिके शाब्दिक अर्थकी शब्दशास्त्र और युक्तितर्ककी सहायतासे बुद्धिद्वारा यथासम्भव निपुणताके साथ पर्यालोचना करनेपर भी नामके वास्तविक अर्थका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। किसी एक नये मनुष्यसे भेंट होनेपर, उसके सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके आकार-संनिवेश और गतिविधिका विशेषरूपसे निरीक्षण करनेसे, अथवा बाहरसे उसकी कितनी ही बातें सुनकर या कार्योंको देखकर या उसकी वंशावलीका परिचय जाननेसे भी उस मनुष्यको यथार्थ रूपसे जाना या पहिचाना नहीं जाता। मनुष्यके साथ नाना प्रकारकी अवस्थाओंमें बार-बार संग करते-करते उसके कार्य-कलाप, वार्तालाप, हावभाव इत्यादिके भीतरसे उसके अन्तर्जीवनकी प्रकृतिके सम्बन्धमें जितना घनिष्ठ परिचय प्राप्त होता है, मनुष्यकी चिन्ताधारा, भावधारा, कर्मधारा, ज्ञान-विज्ञान, शक्ति-सामर्थ्य और सुख-दुःख इत्यादिके साथ जितना योग संस्थापित होता है, उतना ही उसको पहचाना जाता है, समझा जाता है और उसके साथ एक सम्बन्ध प्रतिष्ठित हो जाता है। उसी प्रकार नाम-देहके अङ्ग-प्रत्यङ्गके संनिवेशको बारीकीसे खोजनेपर भी उसके सम्बन्धमें कोई वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं होता और तत्त्वतः नामका अर्थ अज्ञात ही रहता

है । नामके वास्तविक अर्थका यथार्थ परिचय प्राप्त करनेके लिये नित्य-निरन्तर विचारशील चित्तसे नामकी सेवा करना आवश्यक है । श्रद्धा, भक्ति और एकाग्रताके साथ विचारपूर्वक नामका संग और सेवा करते-करते नाम-रूपमें अवतीर्ण भगवान्‌का स्मरण, चिन्तन और कीर्तन करते-करते—देह, मन और बुद्धि जितनी निर्मल, विक्षेपरहित एवं प्रेम-रस-सिक्त होगी, उतना ही नामके अन्तर्जीवनके साथ साधकका परिचय होगा, उतना ही नाम और नामीके बीचका प्राकृतिक व्यवधान तिरोहित होगा, नामके भीतर भगवान्‌का प्रकाश भी उतना ही समुज्ज्वल होगा और विश्वगुरु भगवान् अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्यके साथ नामके भीतरसे अपनेको प्रकट करके साधकको कृतार्थ कर देंगे और तभी नामका सम्यक् अर्थ जाना जायगा । नामके अर्थको समझ सकना या नामी भगवान्‌के स्वरूपकी उपलब्धि कर लेना एक ही बात है । भगवान्‌को पहचानना ही नामको पहचानना है, भगवान्‌के साथ परिचय होना ही नामसे परिचय होना है । सुदृढ़ विश्वास और अनुरागके साथ नाम-साधन करते-करते जितनी ही नामकी अर्थोपलब्धि होगी, अर्थात् नामके साथ परिचय होगा, उतना ही नामका प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक मात्रा चिन्मय जान पड़ेगी एवं नाम-स्मरण-मात्रसे चित्त भगवान्‌में समाहित हो जायगा । अतः साधकको आरम्भसे ही 'नाम'को चिन्मय, अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न और भगवान्‌के साथ स्वरूपतः अभिन्न मानकर विश्वास रखना चाहिये ।

निरन्तरका नाम-जप ही प्रकृष्ट साधन है । खाते, सोते, बात करते, रास्ता चलते, काम करते—सर्वदा सभी अवस्थाओंमें नाम-स्मरणकी चेष्टा बनी रहनेपर शीघ्र-शीघ्र उन्नति होती चली जाती है । प्रत्येक श्वास-प्रश्वासके साथ नाम-जप करना ही श्रेयस्कर है । ऐसा विश्वास रखना चाहिये कि श्वास लेनेके साथ-साथ अचिन्त्यशक्ति-समन्वित नाम भीतर प्रवेश करके शरीर, इन्द्रिय और मनके प्रत्येक रन्ध्र-रन्ध्रमें प्रवेश कर जाता है, एवं सम्पूर्ण सत्ताको भगवद्भावभावित और भगवद्-भक्ति-रससे प्लावित कर देता है । नाम-जप इस प्रकार करना आवश्यक है कि नाम-जप करनेमें किसी विशेष आयोजन या प्रयत्नकी आवश्यकता न पड़े—अपने अनजानमें भी मन स्वभावसे ही नाम-जपमें लगा रहे । नामकी शक्तिसे मनका धर्म बदल जाता है—नित्य-निरन्तर भगवद्भावाविष्ट होकर रहना ही उसका स्वभाव बन जाता है । शरीर यदि अपवित्र हो, इन्द्रियाँ यदि चञ्चल रहें, मन यदि कुत्सित चिन्तामें डूबा हो, तो भी नामको नहीं छोड़ना चाहिये । नामको किसी प्रकार अपवित्र नहीं किया जा सकता, नामका माहात्म्य किसी प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता, नाम नित्य-शुद्ध, नित्यमुक्त, महाशक्तिका आधार है । सभी अवस्थाओंमें नामका संग करते-करते, नाम ही देहेन्द्रिय-मन-बुद्धिकी पवित्रता, स्थिरता और आत्मनिष्ठता सम्पादन करके अपने स्वरूपको प्रकाशित करेगा । नित्य-निरन्तर नाम-साधनका अभ्यास करनेसे और किसी साधनका प्रयोजन नहीं होता, किसी शक्ति या प्रक्रियाकी सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं होती ।

इस प्रकार ऐकान्तिकनिष्ठ और अनुरागके साथ नाम-जप करते-करते प्राणका कार्य अपने-आप नियमित हो जाता है, चित्त नामानन्दरसके आकर्षणसे विषय-विमुख होकर भगवत्स्वरूपमें धारणा करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेता है एवं क्रमशः भगवान्‌में निश्चला निष्काम-भक्ति प्राप्त कर लेता है । अतः ऐसे सुगम एवं सर्वश्रेष्ठ साधनके द्वारा ही हमें अपना जीवन कृतार्थ करना अभीष्ट है ।

युगधर्म

(लेखक—श्रीश्रीप्रकाशजी दुबे, एम्० ए०)

सभी युगोंका एक 'धर्म' होता है, परंतु सभी युग 'धार्मिक युग' नहीं होते। युगधर्म और धर्मयुगमें उतना ही अन्तर है, जितना वैद्यराज और राजवैद्यमें। धर्म मानवजीवनका वह तत्त्व है जिससे उसका जीवन संयमित, संतुलित एवं संचालित होता है। मनुष्यके शरीर-धारण करनेका क्या उद्देश्य है? उस उद्देश्यकी प्राप्तिके कौन-कौनसे साधन हैं और लक्ष्य प्राप्त होनेके उपरान्त किस प्रकारका व्यवहार हो, ये सारी बातें धर्ममें बतायी जाती हैं।

आजके युगमें 'धर्म' शब्दको तथाकथित शिक्षितवर्ग हेय दृष्टिसे देखता है। अपनेको किसी धर्मके अन्तर्गत न मानना एक फैशन होता जा रहा है। पर क्या आदमी बिना धर्मके रह सकता है? 'धर्म' से मेरा तात्पर्य हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी इत्यादिसे नहीं। धर्मका अर्थ बड़ा व्यापक और विस्तृत है। अंग्रेजी भाषामें तो इसके अर्थको प्रकट करनेवाला कोई उपयुक्त शब्द ही नहीं है। जिस प्रकार मनुष्यके लिये भोजन, वस्त्र आदि अत्यावश्यक है, उसी प्रकार धर्म भी। धर्मके कारण ही हम 'मनुष्य' बने हैं, नहीं तो पशु और हममें कोई अन्तर नहीं—

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

आधुनिक युग मुख्यतया विज्ञानका युग है। प्रज्ञावाद (Intellectualism) आजका मुख्य दर्शन है। आध्यात्मिक विचारधाराएँ अब कुण्ठित-सी होती जा रही हैं। धर्मका ह्रास होता जा रहा है। प्रज्ञावादके चक्करमें आकर मनुष्य मशीन हो गया है। जब बुद्धितत्त्व प्रधान होता है, तो हृदयतत्त्व गौण हो जाता है। परंतु बुद्धिकी भी एक सीमा होती है। वहाँतक पहुँचनेके बाद बुद्धि 'अज्ञात'की कठोर मारोंसे ऊबकर लौट आती है, तब हृदय-पक्षका प्राधान्य होता है। धर्मका सम्बन्ध बुद्धिकी अपेक्षा हृदयसे अधिक है। यद्यपि बुद्धि मानवमात्रके लिये वरदान है, परंतु भस्मासुरकी भाँति बुद्धिने इस वरदानका 'परीक्षण' प्रारम्भ कर दिया है। एटम बम, हाइड्रोजन बम आदिके परीक्षण बुद्धितत्त्वके प्रलयंकारी नृत्य हैं, जिन्हें शिव—(अर्थात् कल्याणकारी) शक्तिके द्वारा ही शमित किया जा सकता है। बुद्धिकी मदिरामें प्रमत्त आज विश्वरूपी मानव युद्धके कगारपर खड़ा झूम रहा है, उसके पद विचलित हो रहे हैं। स्थितिकी भयानकता बढ़ती जा रही है और यदि कोई उसे चेतनामें लानेका प्रयास नहीं करेगा तो विनाश निश्चित है।

आखिर इस मदिराको बनानेवाले कौन हैं और कहाँ है वह स्थान जहाँ यह बनती है? इस 'मधु' का निर्माण करनेवाले हैं आजके वैज्ञानिक। मधुशाला है वैज्ञानिक प्रयोगशाला और पिलानेवाली 'मधुबाला' है—आजका राजनीतिकवर्ग। लगभग पिछले पचास वर्षोंसे मानव (चाहे वह पश्चिमका हो या पूर्वका) विज्ञानके नशेमें चूर है और धर्मको भूलता जा रहा है। आजके नवीनतम वैज्ञानिक आविष्कार उसके नशेको और उद्दीप्त करनेवाले नृत्य-गायनका लालच दे रहे हैं।

धर्मके ह्रासका एक और कारण है। वह है—विचार-स्वातन्त्र्य। यहाँ एक प्रतिवाद उठ सकता है कि विचार-स्वातन्त्र्य तो मानवकी विभूति है, यदि इसकी वजहसे धर्मका ह्रास होता है तो हो। यदि धर्म विचार-स्वातन्त्र्यपर प्रतिबन्ध लगाता है तो वह धर्म नहीं वरं अधर्म है। विचारोंकी दुनियामें स्वतन्त्रता तो सबके लिये अपेक्षित है। परंतु यह स्वतन्त्रता नियन्त्रण न पाकर उच्छृङ्खलता, उद्दण्डता और बर्बरतामें परिणत हो जाती है। पतंग जबतक डोरसे युक्त रहती है, तबतक तो ठीकसे उड़ती है, परंतु जब डोर टूट जाती है तब वह 'अवारा' हो जाती है जिसका न कोई पथ है न लक्ष्य। अतः स्वतन्त्रताको 'अतन्त्रता' में बदल जानेसे रोकनेके लिये धर्मरूपी डोरकी आवश्यकता होती है।

संयोगकी बात है कि अब दुनियाकी वे शक्तियाँ जो मदान्ध होकर एक दूसरेको युद्धके लिये ललकार रही थीं, कुछ-कुछ होशमें आ रही हैं। विगत दो महायुद्धोंकी विभीषिकाएँ यह सिद्ध कर चुकी हैं कि हिंसक प्रवृत्तिसे मानवताका संहार हो जायगा, विश्वका विनाश हो जायगा। अहिंसासे ही जीव और जगत्की रक्षा हो सकती है। तो क्या

अहिंसा ही 'युगधर्म' है, जिसे होशमें आकर मनुष्यने समझा है ? हाँ, अहिंसा ही 'युगधर्म' है । अभी थोड़े ही दिन हुए विश्वकी महान् शक्तियोंने आपसमें अहिंसात्मक संधि की है कि वे यथासम्भव युद्ध न करेंगी । वास्तवमें यदि इतिहासपर दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि युद्ध या हिंसासे किसी समस्याका समाधान नहीं हो पाया है । अहिंसा ही वह शक्तिशाली अस्त्र है, जिससे सभीपर विजय पायी जा सकती है ।

इस युगधर्म 'अहिंसा' का पाठ विश्वने भारतसे पढ़ा है । इस अहिंसारूपी अमृतका निर्माण करनेवाले हैं—भारतके ऋषि, महर्षि; निर्माणस्थल है भारत, मधुशाला है सम्पूर्ण विश्व और मधुबाला है भारत-भूमिमें जन्म लेनेवाला जनसमुदाय । भारत सदासे गुरुओंका देश रहा है । सिकंदर जब भारत-विजयके लिये आने लगा, तब उसके भी गुरु अरस्तूने उससे भारतका एक 'ज्ञानी गुरु' लानेको कहा । ज्ञानकी किरणें 'पश्चिम'को 'पूर्व' से ही जाती हैं । गुरुओंका देश होनेके साथ-ही-साथ भारत धर्मोंका भी देश रहा है । यह अनेक धर्मोंकी जन्मभूमि है । हिंदू, जैन, बौद्ध, सिख इत्यादि धर्म भारतमें ही उत्पन्न होकर अन्य स्थानोंपर फैले हैं । विश्वके अन्य किसी भी देशको अनेक धर्मोंकी जन्मभूमि होनेका श्रेय नहीं प्राप्त है । यहींसे भगवान् बुद्धके मध्यममार्ग और भगवान् महावीरके अहिंसा-संदेश दूर-दूरतक फैले । यहींसे भगवान् श्रीकृष्णके निष्काम कर्मवाद-को दुनियाके लोगोंने सीखा और समझा ।

स्वतन्त्रताप्राप्तिके पश्चात् भारतमें जब अपनी सरकार बनी तो इस युगधर्मके आधारपर ही भारतकी अन्ताराष्ट्रीय नीति निर्धारित हुई । पञ्चशीलके सिद्धान्तोंको भारतने पुनः नया स्वरूप दिया और अनेक देशोंने इन सिद्धान्तोंको अपनाना शुरू किया । स्वतन्त्र भारतका यह सोलहवाँ साल था । इसी किशोरावस्थामें इसने वयके अनुरूप खेल खेलना प्रारम्भ किया । यह खेल भी सामान्य खेल नहीं था । भारतकी परम्परा और गरिमाके अनुरूप था । यह खेल था कबूतर उड़ानेका । शान्ति और अहिंसाके प्रतीक श्वेत कपोतोंको भारतने नेहरूके प्रतिनिधित्वमें उड़ाया । ये कबूतर विश्वके आकाशमें काफी दिनोंतक और काफी ऊँचाईतक उड़ते रहे । परंतु एक खूनी बाज (चीन) ने इन्हें देख लिया और उसके लिये इनका उड़ना असह्य हो गया । उस बाजने शान्ति कपोतके दोनों पंख (नेफा और लद्दाख) को नोच डाला । कबूतर आसमानसे नीचे गिरकर छटपटाने लगा, करुण चीत्कार करने लगा । फलस्वरूप दुनियाके प्रायः सभी देश इसकी सहायताके लिये आगे बढ़े । कबूतरकी मरहम-पट्टी हुई और वह सब ठीक हो रहा है । वह अब शक्ति संचित कर रहा है, उस खूनी बाजका मुँह तोड़ देनेके लिये । पर यह शक्तिसंचय भी अहिंसात्मक ही है ।

अहिंसाका अर्थ भी धर्मकी भाँति विस्तृत है । अहिंसाका अभिप्राय दुर्बलताके कारण, असमर्थताके कारण हिंसासे दूर रहना नहीं, वरं सशक्त होकर भी हिंसा न करना है । हिंसकको अपने बलसे समाप्त कर देना भी अहिंसा है । दुष्टोंका दलन, श्रेष्ठोंका सम्मान, स्वाभिमानकी रक्षा, दूसरोंपर आक्रमण न करना, शान्तिपूर्वक समस्याओंका हल इत्यादि सारी बातें अहिंसाके अन्तर्गत आती हैं । समाचारपत्रों और पत्रिकाओंमें कभी-कभी यह पढ़नेको मिला कि भारत अपनी पुरानी अहिंसात्मक नीतिसे डिग रहा है; क्योंकि वह चीनसे संघर्षके लिये युद्धकी तैयारियाँ कर रहा है । परंतु मेरे मतमें तो रक्षाके लिये युद्ध हिंसा नहीं है, आक्रामक हिंसक होता है । रक्षार्थीकी रक्षा करनेके प्रयासमें यदि हिंसा हो जाय, तो वह हिंसा नहीं है । श्रीकृष्णद्वारा प्रेरित महाभारतका युद्ध इसी भारतमें पाण्डवोंके द्वारा आत्मरक्षाके लिये किया गया था । आज भी भारत और चीनमें एक महाभारतकी सम्भावना है । परंतु भारत अभी भी शान्तिपूर्ण समझौतेके लिये तैयार है । पर इस संधिमें स्वाभिमानकी रक्षाकी एक शर्त है । जो इस शर्तको नहीं मानेगा, उससे निपट लेनेको भारत तैयार है । उसके पास अहिंसा-जैसी शक्ति वर्तमान है, जिसने बड़े-बड़े सिंहासनोंको हिलाना सीखा है ।

जिस प्रकार वाद (नियम) अपवादके बाद भी बना रहता है, उसी प्रकार अहिंसाका सिद्धान्त भी हिंसोपरान्त स्थिर रहता है । आजके युगकी पुकार है कि अहिंसापूर्वक जीओ और जीने दो । जो इस युगधर्मकी अवहेलना करता है, वह मानव नहीं दानव है और उसको मानव बनानेके लिये देवताओंको आवश्यकतानुसार शस्त्र धारण भी करना पड़ेगा ही ।

फागुनके आम

(लेखक—श्रीगंगादत्तजी शास्त्री, साहित्यरत्न)

फागुनका महीना था। होलीमें अभी दस-बारह दिन शेष थे। एक दिन सबेरे मेरी दादीने दादासे आकर कहा—'क्या अबकी होलीपर रामदेवी घर न आयेगी ?'

'आयेगी क्यों नहीं।' दादाने अन्यमनस्कतासे उनकी ओर देखकर कहा। दादी इस खिन्नताका कारण जानती थीं ! वे उदास नेत्रोंसे नीचे देखने लगीं।

एक क्षण बाद आत्मस्थ होकर तत्परतासे दादाने कहा—'एक लड़का होता, तो वही यह काम करता। मैं क्यों इस झंझटमें पड़ता ? मैं तो लड़कीके घरकी हवा भी शरीरको नहीं लगाना चाहता। पर क्या करूँ ? भाग्यका भोग अटल है।'

'तो, कब जायँगे ?' माँकी ममताने एक अज्ञात-सी साँस भरकर पूछा।

'कल ही' दादाने उन्मुक्तभावसे कहा—'सोमवार पञ्चमी है। योगिनी बायें और चन्द्रमा सामने रहेगा। कल उषाकालमें यात्रा करूँगा।'

'ठीक है। नहीं तो, दो दिन बाद 'होलाष्टक' लग जायेगा।'

'मुझे वहाँ रुकना थोड़े ही है। कल गया, परसों सबेरे विदा करा लाया बस।'

'तो, सामानकी तैयारी करूँ न ?' 'हाँ-हाँ' दादी चली गयीं।

मेरे दादा गौर-वर्ण लम्बी कायावाले तेजस्वी पुरुष थे। उनमें अनासक्त गृहस्थ और सरस साहित्यिकका ऐसा विलक्षण समन्वय था कि उनका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक बन गया था। लोग कहते हैं कि उन्हें स्यात् हस्ताक्षर करना भी नहीं आता था। कदाचित् लिपिका ज्ञान ही उन्हें न हो; किंतु हिंदी साहित्यके उन्हें इतने ग्रन्थ कण्ठाग्र थे, मानो वे नराकार वाणीके अवतार हों। मेरी समझमें, वे वस्तुतः प्रातिभ पुरुष थे। जिस प्रकार आदिकालमें बिना पढ़े ही ऋषियोंको पूर्वतपोऽर्जित प्रतिभाद्वारा वेदविद्याका दर्शन हुआ था; उसी प्रकार निसर्गतः दादाको सरस्वतीका वरदान प्राप्त था।

'रामायण' तो उनका इष्ट-ग्रन्थ ही था। वह तो उन्हें कण्ठाग्र होना ही था। इसके अतिरिक्त गोस्वामीजीके अन्य ग्रन्थोंके हजारों पद, सूर, केशव, देव, कबीर, सेनापति और भारतेन्दु एवं अन्य अनेक कवियोंकी सैकड़ों पदावलियाँ, कवित्त, सवैये तथा बारहमासियाँ उन्हें कण्ठस्थ थीं। जिस समय वे उन्हें अपने उदात्त मधुर सुरसे गाने लगते थे, उस समय मानो समा बँध जाता। श्रोतागण रससागरमें गोते खाने लगते। अपनी इसी भगवद्भक्ति और काव्यप्रभुताके कारण उनका अधिकांश समय बाहर सुभाषित-गोष्ठियोंमें ही बीतता। लोग उन्हें शीघ्र छोड़ते ही न थे।

एक बार 'पंकजराय' नामक एक 'भाट (चारण)' जो अपनेको 'आशु कवि' कहता था, गाँवके मन्दिरमें आकर ठहरा। मन्दिरके अध्यक्ष ठाकुर साहब, जो गाँवके जमींदार भी थे, बड़े काव्यप्रेमी, गुण-ग्राहक और हाबी पुरुष थे। पंकजरायके आनेका उद्देश्य ठाकुरसाहबको अपने काव्य-कौशलसे प्रसन्न कर कुछ दान-दक्षिणा प्राप्त करना था। ऐसे लोग उस समय जब-तब आते रहते थे और ठाकुरसाहब उनका यथोचित आदर-सत्कार करते थे। ठाकुरसाहब दादाजीके शिष्य तो थे ही, भक्त भी थे। फलतः, अपने गौरवकी रक्षाके लिये, ऐसे आगत लोगोंमें दादाकी मुठभेड़ होती रहती। ठाकुरसाहबने दादाको सादर सूचित किया और रायसे उनका परिचय कराया। दूसरे दिन दोनोंकी काव्य-प्रतियोगिता होनी निश्चित हुई। भट्टका यह आनुवंशिक पैतृक धंधा ठहरा। उसे अपनी काव्य-सम्पदापर गर्व और विश्वास था। उसने स्वयं पण्डितम्मन्य नम्रताके साथ मुसकराकर 'दादा'को वाग्युद्धके लिये आमन्त्रित किया।

दूसरे दिन पूजा-पाठसे निवृत्त हो, अपने इष्टदेवोंको मनाकर दोनों काव्य-कलामें मन्दिरके मैदानमें अपने-अपने आसनपर विराजे। श्रोताओंकी भीड़का क्या ठिकाना। जिस रसका, जिस छन्दका पद्य भट्ट पढ़ता, उसी कविके उसी ढंगका पद दादा प्रत्युत्तरमें पढ़ते। यह कोई साधारण काम न था। स्मृति-शक्ति और प्रत्युत्पन्न-बुद्धिकी पूरी कसौटी थी। ठाकुरसाहब इस कलाके पूरे रसिक और पारखी थे। उनके रसावेशका क्या कहना। वायुमण्डलमें शोर और सन्नाटा दोनों थे। लोग दोनोंको यथोचित सराहते। दस

बजे दिनसे यह काव्य-स्पर्धा आरम्भ होकर शामको एक घंटाके लिये रुकी। नित्यकृत्य और व्यालूसे निपटकर दोनों महारथी फिर डट गये। आधी राततक पदोंकी प्रतियोगिता होनेके बाद भट्ट बोला—'महाराज ! अब बारहमासियाँ हों।' दादा उछल पड़े। उनको भी यही इष्ट था। किंतु भट्टकी ओरसे आरम्भ होनेके कारण वह अपनी ओरसे किसी प्रकारकी रियायत न चाहते थे। सूर्योदयतक यहाँ वाग्युद्ध चला। अन्तमें भट्ट उठा, उसने दादाके चरण छुए और अपनी पगड़ी उनके पैरोंके पास रख दी। दादाने उसे हृदयसे लगाकर बार-बार उसकी काव्य-सम्पत्तिकी सराहना की और विशेष आदर-दानपूर्वक उसकी 'बिदायी' करवायी। इसी प्रकार प्रायः उनकी काव्यप्रतिभा और भगवद्भक्तिके आगे प्रतिद्वन्द्वी सानन्द पराजय स्वीकार करके अपनेको कृतकृत्य मानते और दादा उन्हें और भी सत्कृत करते-कराते थे।

उनका यह तीसरा विवाह था। अवस्था चालीसके कुछ ऊपर। पहलेकी दो पत्नियाँ जब एक-एक करके निःसंतान ही दिवंगत हो गयीं, तब वंश-रक्षा और पितरोंकी जलाञ्जलिके अर्थ ही केवल पुत्र-लालसासे उन्होंने यह तीसरा विवाह कर लिया था। दादीके पिता भागवतके विद्वान् पण्डित थे। दादाकी भक्ति और पाण्डित्यपर मुग्ध होकर अपनी कन्या उन्होंने विवाही थी। इस विवाहसे केवल एक लड़की उत्पन्न हुई। नवें वर्ष ही उसका विवाह कर दिया गया। पुत्रके लिये दोनों चिन्तातुर थे। दादाके यहाँ एक-दो गायें सदा रहतीं। हल तो हमारी वंशपरम्परामें किसीने छुआ ही नहीं। स्यात्, यह विद्या आती ही न थी। थोड़ी-बहुत खेती बटाईपर उठा दी जाती, धरती खाने भरको दे देती। न भी देती, तो ठाकुरसाहबके सत्कार-पात्र होनेके कारण किसी प्रकारका कष्ट दादाको न था—केवल पुत्रकष्टको छोड़कर। इस विषयमें सामान्यतया मनुष्य प्रायः असमर्थ है। ठाकुर बेचारे क्या करते ? वे स्वयं संतानहीन थे।

दादाजीको भजनकी लगन, शतरंजकी लत और काव्य-चर्चाका चाव था। उनका सारा समय अधिकांश इन्हीं तीनों कामोंमें बीत जाता। गोघृतमिश्रित अरहरकी दाल-भात उनका प्रिय भोजन था। दोपहरतक डटकर पूजा-पाठ करते, दोपहरको बस एक बार भोजन करते। तीसरे पहरतक शतरंज खेलते। इसके बाद रातके दस बजेतक रामायण-महाभारतकी कथा-वार्ता एवं काव्यचर्चा होती रहती। उठते ही प्रातः; दोपहरको भोजनके बाद और सोते समय वे तम्बाकू पीते थे। उनकी चिलम निजी थी। न दूसरेकी पीते न पिलाते। अपनी इकलौती बेटीसे वे बहुत प्रेम करते थे; किंतु पुत्रका काम तो वह नहीं दे सकती थी। खूब चाहकर भी वे लड़कीके यहाँ जाना न चाहते थे। कट्टर सनातनी ब्राह्मण थे। लड़कीके घरकी हवासे भी घबराते। इसीलिये पुत्रका अभाव उन्हें और भी खलता। किंतु क्या करें ? पुत्री-प्रेम और कर्तव्यसे विवश होकर उन्हें जाना पड़ता था।

(२)

दूसरे दिन सूर्योदयसे पूर्व ही दादाने कूच कर दिया। कंधेपर खुर्जी, बायें हाथमें बाँसकी लाठी और दायें हाथमें जप-थैलीके भीतर सुमरिनी (माला)—यही उनकी प्रस्थान-कालिक सजधज थी। खुर्जीमें पुत्रीको देनेके लिये कुछ वस्तुओंके अतिरिक्त उनकी एक विशेष खाद्यसामग्री थी, जो कच्चे गोदुग्धमें शक्करके साथ आटा मौंड़कर गोघृतमें पकाई पूड़ियाँ थीं। यात्रामें उनका यही प्रिय पाथेय खाद्य था। मार्ग तय करने लगे। दो सौ सुमरिनियोंका उनका मन्तव्य था। एक मीलमें स्यात् वे अपने इष्ट-मन्त्र-की दस मालाएँ जप लेते थे। वे कोस भरको बीस सुमरिनी-मार्ग कहते थे। बुआ (उनकी लड़की) की ससुराल पश्चिम-की ओर दस कोस दूर 'शिवनगर' नामक ग्राममें थी। दादा इसी प्रकार जपी हुई मालाओंकी दरसे पथकी दूरी नापते थे। शिवनगरके मार्गमें दोहा नामकी नदी और एक छोटा-सा जंगल पार करना पड़ता था। शिवनगर जब कोस भर रह जाता, तब नदी उतरनी पड़ती। वह अधिक गहरी न थी। नदीके दोनों किनारोंपर आधे-आधे मीलतक ढाक, बबूल, जंगली जामुन और सरपतसे भरा जंगल था। जिसमें जगह-जगह अखेरी, हींस, इन्द्रायन आदि भाँति-भाँतिकी बनैली बेलें फैली हुई थीं। इस वनमें सिंह तो नहीं, किंतु भेड़िये, बराह, हरने आदि कभी-कभी दिखायी दे जाते थे। नदीकी निचली तराईमें देशी रईस और कभी अंग्रेजी अफ़सर भी शिकार खेलने आया करते।

नदीके घाटसे शिवनगरकी ओर जो सैर (रहल्का पथ) जाता था, वह भी घने वृक्ष-लताओं और कँटीले गुल्मों-से दोनों ओरसे घिरा था। जंगलके निकासपर दस-बारह झोपड़ियोंवाली पासी पंखियोंकी एक बस्ती थी। बस्तीके उत्तर

ओर लता-वृक्षोंकी बाड़के बीच एक कच्ची मड़ी और कुइँया थी। जहाँ कभी-कभी कोई बिरला फकीर ही ठहर सकता था या फिर जंगली जानवर या लुटेरे।

इस बस्तीसे शिवनगर लगभग आधा कोस दूर था। दादा प्रायः इसी मड़ीपर कुछ विश्राम करते। स्नान-भोजनसे वहीं निपटकर सूरज डूबनेसे पहले ही वे शिवनगर पहुँच जाते। चलते समय वे इसी बस्तीसे चिलमके लिये आग और कुछ उपले संग्रह कर लेते थे। कोई भी वस्तु वे शिवनगरकी उपभोगमें न लाते थे।

तीसरा पहर समाप्ति पर था। दादाने कुछ विश्राम कर नदी पार कर ली। बोले 'जय सीताराम, अब अपने रामको बीस सुमरिनी मार्ग ही शेष है। आ गये। जय सीताराम।' उनका विचार, आधे मीलका जंगल पारकर, पहलेके समान मड़ीपर स्नान-भोजनकर शिवनगर जानेका था।

नदीकी लहरोंसे शीतल, करौंधी और भटारकी पुष्प-गन्धसे व्याप्त वसन्तकी वन्यवायु उनकी भगवद्भक्तिको और भी उद्भासित करने लगी। कृष्ण-गर्भ आरक्त पलाश-पुष्पोंसे आच्छादित वरुणदिशोन्मुख वनस्थली, वारुणी-उन्मुख सूर्यदेवकी अरुण-सुनहरी आभासे मढ़कर किसी रहस्यमय दिव्य रागकी रंगमंच-सी लगने लगी। आनन्दमयकी नान्दी-बनी-सी कोकिल वनीके पार्श्वसे जब-तब कूक उठती। काव्य-प्रेमी दादा इस निसर्ग-सुषमासे आत्मविस्मृत होकर घाटके चढ़ावपर धीरे चलने लगे। हाथ उनका सुमरिनीपर और मन इष्टके चरणोंमें था। अभी दो-चार पग ही चले होंगे कि किसीने कर्कश स्वरमें पुकारा—

'कौन है? खड़ा रह।' किंतु दादा तो अपनेमें थे ही नहीं।

'अरे सुनता नहीं। बहरा है क्या? या मौत आयी है?' स्वरमें कठोरताकी ललकार और बढ़ी।

अब वे चौंककर ठिठक गये। उन व्युत्पन्न-बुद्धिको समझते देर न लगी कि इस सुनसान मार्गमें इस प्रकार पुकारनेकी परिपाटी किन लोगोंकी हो सकती है? उन्होंने घबराकर देखा। दायें ओर कोई पंद्रह गजकी दूरीपर, सरपतके झुरमुटसे निकलकर दो मनुष्य खड़े हैं। उनका स्वर, कमरसे बँधी कृपाण, हाथमें लंबे भाले और बड़ी-बड़ी दाढ़ीवाले मुखोंपर बँधे ठाठोंके ऊपर चमकती विषधर-सी भयंकर आँखें उनके स्वभाव और व्यवसायका पूरा परिचय दे रही थीं। दादा क्षणभरको भयसे भौचक्के रह गये।

'इधर आ, किधर जाता है?' उनमेंसे एकने कुछ आगे बढ़कर हाथसे संकेत किया। किंतु मौत भले ही आ जाय; उसकी ओर जान-बूझकर कौन बढ़ता है! दादा जहाँके तहाँ खड़े रहे, उन्हें न आगे बढ़नेका साहस हुआ न पीछे हटनेका। तबतक वह और पास आ गया।

बाबाका वैष्णवी तिलक, हाथकी सुमरिनी और उनकी निरीह तपोमयी शान्त मुद्रा। वह कई पलतक अपलक देखता रहा। वह समझ गया कि जिसे उसने मोटा शिकार समझा था, वह तो एक निरीह साधु है। शान्त ब्रह्म-तेजके आगे उसका भाव बदला, दृष्टि बदली और स्वर भी बदल गया।

'क्यों बाबा, कौन हो? कहाँ जाना है?' उसने सहज स्वरमें पूछा, तबतक दूसरा दस्यु भी पास आ गया। बोला—

'कोई पंडाजी लगते हैं। किसी जिजमानसे माल मारकर लाये होंगे। इनका आड़ा लो' और वह 'हो-हो' कर हँस पड़ा। दादा तबतक स्वस्थ हो चुके थे। बोले—'भैया! मैं तो एक गरीब ब्राह्मण हूँ। लड़कीको लिवाने जाता हूँ। तुम्हें क्या चाहिये?'

'इस झोलेका माल' कहकर दूसरा दस्यु फिर हँसा। दादाने कंधेसे खुर्जी उतारकर जमीनपर रख दी। बोले—

'इसमें लोटा-डोर और कुछ खाना है। लड़कीके लिये एक धोती और कुछ अन्न है। तुम चाहो तो तुम्हीं इसे ले सकते हो।' मानो डाकू और बेटीमें उनके लिये कोई अन्तर ही न हो।

'नहीं बाबा, आप जायँ।' पहलेने आदरपूर्वक मृदु स्वरमें कहा। दादा स्वस्तिकी साँस लेकर चल पड़े।

तबतक नदीकी निचली खड्डसे निकलकर, वैसा ही एक दस्यु वहाँ आकर बोला। 'क्यों कौन था? कुछ निकला नहीं?'

'एक गरीब ब्राह्मण था। लड़की बुलाने जा रहा है। उसके पास खाना और लोटा-डोरके सिवा और क्या होना है?'

'अच्छा' उसने कुछ निराश होकर कहा—'आड़ा नहीं लिया, उसे जरा रोको तो।' 'क्यों?'

'उससे कुछ खाना लेंगे । हमारा सरदार भूखा है और हम भी।' इतना कहकर वह दौड़ा। वे दोनों साथ हो लिये।

'किंतु ब्राह्मणका छीना हुआ खाना तो हमारा सरदार छुयेगा भी नहीं' पहलेने पूछा।

'छीनेंगे क्यों ? माँग लेंगे । बदलेमें मूल्य दे देंगे' और उसने पुकारा 'महाराज, जरा ठहरना !' दादा फिर असमंजसमें खड़े हो गये। भला इन डाकुओंका क्या भरोसा।

'बाबा, थोड़ा खाना देंगे ? हमारा सरदार भूखा है।' पहले दस्युने, जिसकी वाणीमें अब ललकार नहीं, विनीत प्रार्थना थी, कहा। किसी भूखेकी प्रार्थनापर, चाहे वह डाकू ही क्यों न हो, ब्राह्मण भला पासका खाना न दे ? दादा तो दयाकी मूर्ति थे।

'ले जाओ भाई' कहकर वे झोला उतारकर खाना निकालने लगे।

'नहीं, महाराज, आपको हमारे सरदारके पास चलना होगा। यदि कहीं उन्हें व्यर्थ संदेह हो गया कि हम ब्राह्मणसे खाना छीन कर लाये हैं; तो वे हमारी जान ले लेंगे और खाना भी न छुयेंगे।'

'हमारे सरदार सामने खड्डवाली झाड़ीके पास ठहरे हैं। यदि आपकी मर्जी हो तो वहाँतक चलनेकी तकलीफ करें। कोई जबरदस्ती नहीं है।' तीसरेने विनयसे कहा। दादाका भय घोर कौतूहलमें बदल गया। ऐसे धर्मप्राण मर्यादाव्रती डाकूको देखनेका उन्होंने निश्चय कर लिया। पीछे आया हुआ दस्यु सम्भवतः परिस्थितिका परिचय कराने, तेजीके साथ अपने सरदारके पास चला गया। शेष दो दादाको लेकर उसी ओर चले।

तीन ओर घनी कँटीली झाड़ियोंसे घिरे एक छोटे-से स्थानमें, घोड़ेकी जीन बिछाये एक दीर्घकाय तेजस्वी पुरुष बैठा था। उसके गल-मुच्छोंके ऊपर अरुणाभ आँखोंमें सिंह-जैसी दीप्ति उसके स्ववीर्य-वृत्तित्व और स्वव्रतकी अनन्यनिष्ठाको पूर्णतया प्रकट करती थी। दादा उस नरसिंहको देखते ही समझ गये कि वह प्रताप, शिवा और बंदा-जैसे महापुरुषोंका लघु संस्करण है। विकासके साधन उसे भी उक्त राष्ट्र-विभूतियोंके निकट ले जा सकते हैं।

दादाको देखते ही वह आसनसे उठ बैठा। सस्मित श्रद्धा-विनम्र नेत्रोंसे उनकी ओर देखकर, दोनों हाथ जोड़कर उसने अभिवादन किया। फिर सरदारके संकेतपर उसके एक साथीने अपना दुशाला दादाके लिये बिछा दिया। आशीर्वचन कहकर दादा बैठे। सरदार भी अपने स्थानपर बैठ गया। उसके शेष साथी चौकन्ने होकर खड़े रहे।

'महाराज, आपको हमने कष्ट दिया। क्षमा करें !' कुछ सलज्ज स्वरमें सरदार बोला—'ऐसे चक्रमें हम फँस गये हैं कि कलसे भोजन हाथ ही न लगा। जो दो आदमी भोजनका प्रबन्ध करने गये थे, वे न जाने कहाँ अटक गये······' कहते-कहते वह ठहर गया।

'इसीलिये तो भगवान्‌ने मुझे इधर भेजा है। उसे कोई नहीं अटका सकता। वह सबको देता है। आपलोग संकटमें लगते हैं। शीघ्र भोजन कर लें और अपनी रक्षाका प्रयत्न करें।' दादा आत्मीयतासे बोले।

'हाँ, महाराज, किंतु ब्राह्मणका अन्न हम कैसे खा सकते हैं ?'

'भैया, भोजन ब्राह्मणका नहीं, भगवान्‌का है। उसीने ब्राह्मणके हाथ भेजा है। किसी-न-किसी बहानेसे वही सबको खिलाता है। उठो, अब देर न करो' और वह भोजन निकालने लगे।

कुछ जोरकी भूख और कुछ दादाके सहृदय अनुरोधसे सरदार राजी हो गया। चारों ओर मुँहकर सावधानीसे वे लोग खाने बैठे। दादाने पत्तोंपर भोजन परोस दिया।

और आपी आप भी तो खाने बैठिये।

'हम आगे चलकर खा-पी लेंगे। हमें मजबूरी भी क्या है ?'

'वाह देवता ! ब्राह्मणके होते बिना उसे खिलाये हम कैसे खा सकते हैं ?' और सरदार आसनसे उठने लगा। दो दिनसे भूखे इस डाकूमें ऐसी धर्मनिष्ठा देखकर दादा और विस्मित हुए। उन्होंने नदीमें नहाकर उस दस्यु-मण्डलीके साथ भोजन किया। भोजन पौष्टिक, स्वादिष्ट और पर्याप्त था। सब संतुष्ट हो गये।

भोजनके बाद सरदारने पाँच रुपये और शेष तीनोंने दो-दो रुपये दादाको दिये। सरदार बोला—'बाबा, मेरी ओरसे बेटीजूको इन रुपयोंकी कोई वस्तु लेकर भेंट कर देना' और वह पास बँधे अपने घोड़ेकी ओर बढ़ा।

'नहीं, मैं ये रुपये तो न ले सकूँगा।' 'क्यों ?' घूमकर साश्चर्य स्वरमें खिन्नतासे सरदार बोला।

'आपलोगोंको भोजन कराकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ—बदलेमें रुपये लेते ग्लानि होती है—और···।'

'क्या डाकुओंका धन छूते ग्लानि होती है ?' उसने व्यंग्यसे पूछा।

'नहीं, भैया, तुम्हारा यह सब व्यवहार देखकर तुम्हें 'डाकू' कौन कह सकता है ? राम ! राम !' यह बात नहीं।

'नहीं, देवता ! हम डाकू तो हैं, किंतु आततायी शासन और अर्थपिशाचीके समाजके लिये,—जिन्होंने हमें डाकू बननेपर विवश किया है ? आप-जैसे संतोंके तो हम सेवक ही हैं। अपना अन्न मुफ्तमें खिलाकर हमें क्या नरकमें गिराना चाहते हैं ?' दादा अवाक् हो गये। सरदार घोड़ेतक गया। वहाँसे सुनहरी किनारीकी कीमती साड़ी लाकर उसने दादाको दी और बोला—'यह साड़ी लूटकी नहीं है, मेरे घरकी है। मेरी बेटी भी इधर ही विवाही है।' उसका स्वर रुद्ध हो गया।

'तो भैया, उसीको देना। एक बेटीकी साड़ी (वस्त्र) दूसरीको क्यों दी जाय ?' दादाने वेदनापूर्वक कहा।

'इसीलिये तो मैं इधर आया, पर उससे मिल न सका।' उसकी आँखें छलछला आयीं।

'क्यों ?'

विस्मित दादा उस धर्मवत्सल महात्मा दस्युकी ओर मुग्ध होकर देखते रहे।

'वहाँ गुप्तचरविभाग सब ओर घूम-फिर रहा है।' बेटीने अपनी सौगंध दिलाकर कहलवाया है कि 'बाबा (मैं) इधर न आयें अभी।'

'तो मुझे बेटीका पता बताइये, मैं दे आऊँगा' दादा द्रवित हो गये।

'उसीको तो देनेके लिये दी है। बेटी-बेटीमें कहीं भेद होता है ?' वह उदारतासे हँसा। फिर साड़ीसहित रुपये बरबस दादाकी खुर्जीमें रखकर वह दस्युनामधारी महात्मा अपने साथियोंसहित अश्वारूढ हो देखते-देखते वहाँसे अदृश्य हो गया। दादा कुछ देर संज्ञाशून्य-से खड़े रहे, फिर एक गहरी साँस लेकर आगे बढ़े। × × ×

(४)

दादाजी जब मड़ीपर पहुँचे तब थोड़ी-सी चमक रह गयी थी। उनका विचार अब वहाँ रुकनेका न था। जरूरत भी नहीं थी। उन्होंने कुछ उपले बटोरे, आग ली और मड़ीके पाससे होकर निकले कि उनके कानमें सुनायी पड़ा 'बच्चा, जय सीताराम।' जिस इष्टमन्त्रका वे निरन्तर जप करते थे, उसी नामकी त्रैलोक्य-पावन ध्वनि सुनकर वे घूम पड़े। देखा, मड़ीसे उत्तर एक वट-वृक्षके नीचे एक संत बैठे हैं। दादा परम साधुसेवी व्यक्ति थे। 'बाबा, जय सीताराम' कहते हुए वे साधुकी ओर आदरसे बढ़े।

दादा साधुके पास जाकर प्रणाम कर बैठे तो सही, पर पूर्व घटनाका प्रभाव उनपर नशेकी तरह छाया हुआ था। उसमें तन्मय—विभोर होनेके कारण वे साधुकी ओर विशेष उन्मुख न होकर चुप-चाप माला जपते रहे।

'बच्चा, तू कुछ चिन्तित-चकित-सा जान पड़ता है' संतने पूछा।

'हाँ, महाराज, अभी ऐसी विलक्षण घटना घटी कि मैं विमूढ बन गया।'

'क्या विलक्षणता देखी बच्चा, सिंहके रूपमें गाय देखी या आदमी—आदमीके भेषमें भूत देखा ?'

'नहीं-नहीं' साधुकी बातसे दादाको हँसी आने लगी।

'तो बच्चा, डाकूके भेषमें कोई महात्मा देखा होगा ?'

'साधुके वेशमें ठगको तो देख ही रहा है। रोज बहुतेरे देखता होगा।' अब चौंककर दादाने साधुकी ओर देखा। उनके मुखपर रहस्यमय हास्य था। दादाको घोर आश्चर्य हुआ।

'पर बच्चा, साधुके पास तो भय, स्मय-विस्मयको झाड़-पोंछकर शान्त मनसे बात करनी चाहिये। ब्राह्मणके पुत्रको इतनी विमुग्ध-व्यग्रता शोभा नहीं देती।' दादा स्तब्ध बने सुनते रहे।

'बच्चा, श्रेष्ठ साधकको किसी भी संसारी घटनासे मुह्यमान नहीं होना चाहिये। क्या लड़कीके यहाँ जा रहा है' आखिर दादाका मुँह खुला।

'हाँ, महाराज, आपने यह सब कैसे जाना ?' संत हँसे।

'कोई पुत्र नहीं है न ?' 'हाँ, प्रभो ! मैं अभागा-अधम।'

'व्याकुल मत हो। यह तेरी तीसरी स्त्री ही तो है ?'

'हाँ, महाराज।'

'तूने डाकूके रूपमें उसकी साधु-लीला देख ली, अब साधु-वेशमें मेरी ठग-विद्या भी देख। तुझे

विलक्षणता बहुत भाती है न ?' कहकर संतने झोलीमें हाथ डालकर दो आम निकाले। दादाको देकर बोले—'स्त्रीसहित इन फलोंको खाना, तेरे दो पुत्र उत्पन्न होंगे' कहकर कुछ विधि-निषेधके नियम उन्होंने दादाको बताये और सावधानीसे उनके पालनका आदेश दिया। दादा भावविह्वल हो कृतज्ञतासे संतके चरणोंपर झुक गये।

'तू ब्रह्मपुत्र है, मैं मुराउका बालक, मुझे पापमें मत डाल' कहकर उन विनम्र सिद्धपुरुषने उन्हें उठाकर खड़ा किया। कमण्डलु उठाया और जंगलकी राह ली। दादा श्रद्धा-मुग्ध डबडबायी आँखोंसे उन्हें देखते रहे।

(५)

आज लगभग ८० वर्ष बाद मैं यह पावन संस्मरण लिख रहा हूँ। उन्हीं संतकी प्रसादी (आम) के फलस्वरूप मेरे पितृदेव और पितृव्यदेवकी उत्पत्ति हुई। वे सब चले भी गये। उनकी पवित्र गाथासे मुझ अभागेका कुछ पाप धुले, कुछ उद्धार हो, इसी आशासे मैं इसे लिख रहा हूँ। यदि उन दिव्य आमोंका मुझमें भी कुछ अंश हो, तो वे स्वर्गस्थ संत मुझपर कुछ कृपा करें।

ठाकुरसाहबने जब यह घटना सुनी, तब उन्हें संतके दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा हुई। हाथी सजवाया गया। दादाको साथ लेकर वे उस स्थानपर पहुँचे। कई दिनोंतक वनका पत्ता-पत्ता छान डाला; किंतु संतके दर्शन न हुए। संत कहीं खोजनेसे मिले हैं ? और मिलते भी हैं तो नंगे पैर 'राम-राम, रटते रमते रामोंको ही; हाथीके हौदेपर बैठकर आने-वालोंको नहीं !

असलमें ऐसे सिद्धपुरुष तो प्रभुकी प्रेरणासे बल्कि आदेशसे प्राप्त होते हैं। **'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव'**

'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।'

वायुके झोंकेमें दीपक

(लेखक—डा० श्री वि० ए० शणै बी०एस्-सी०, पी-एच्०डी०)

प्राचीन भारतके ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थोंके रचयिता ऋषीश्वरोंने सूत्र-साहित्यनिर्माण-कार्यमें अत्युन्नत प्रौढता प्राप्त की थी। भावको दुरूह न करते हुए केवल थोड़े शब्दोंमें अनेक विषयोंका प्रतिपादन करना सूत्र-साहित्य-का मूल सूत्र है। ऐसा प्रचलित है कि महर्षियोंको इन धर्मग्रन्थोंके प्रणयनके समय सूत्रोंको अति संक्षिप्त बनानेके प्रयासमें एक अक्षर कम होनेपर पुत्रलाभ-जैसा अति आनन्द होता था। लेकिन सूत्रोंमें संक्षिप्तरूपसे छिपे हुए गूढ़ तत्त्वोंको सर्वसाधारण लोगोंको समझानेके लिये भाष्य-साहित्य-निर्माण करनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। उदाहरणस्वरूप अनेक विद्वानोंने श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषदों, नारद-भक्तिसूत्र, शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र इत्यादि धर्मग्रन्थोंपर अनेक भाष्य लिखे। भाष्य-साहित्यका बाहुल्य सूत्रोंका गौरव और महत्त्व दिखाता है।

साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व भारतवर्षके कर्नाटक प्रान्तमें संत पुरन्दरदास नामके एक भक्त हुए। वे कर्नाटकके भक्ति-पन्थके एवं दास-पन्थके आचार्यवरेण्य थे। इस हरिभक्तने अनेक कीर्तन लिखे और कई कीर्तनोंमें सूत्ररूपमें बहुत-से तत्त्वोंका प्रतिपादन किया तथा इन सूत्रोंकी व्याख्या भी की। संत पुरन्दरदासजीद्वारा रचित एक सूत्रकी व्याख्या करनेका प्रयत्न इस प्रबन्धमें किया जा रहा है।

संत पुरन्दरदासजीने अपने एक कीर्तनमें सूत्ररूपमें कहा है कि 'मनुष्यजीवन वायुके झोंकेमें रक्खे हुए एक दीपककी तरह है।' वायुके झोंकेमें रक्खे हुए दीपक—इस सूत्रमें छिपे हुए तत्त्वोंका प्रतिपादन अनेक प्रकारसे किया जा सकता है।

सबसे प्रथम इस सूत्रकी सर्वसाधारण और प्रचलित व्याख्या देखें। एक दीपककी ज्योति कितनी ही छोटी हो, फिर भी इस बातको न भूलना चाहिये कि दीपक गूढ़ अन्धकारमें भी प्रकाश करके अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ है; किंतु अन्धकारमें हमें बाह्य-ज्ञान देनेमें सहायक होनेवाले साधनरूपी दीपकको तेज वायु बुझानेमें सफल हो सकता है। परंतु हम ऐसा नहीं कह सकते कि वायुके झोंकेसे प्रत्येक दीपक बुझ ही जाता है; क्योंकि दीपका बुझना या जलते रहना वायुके वेग और दीप-ज्योतिकी विशालतापर निर्भर है। यह दीप-ज्योति चारों ओरसे काँचसे ढकनेपर नहीं

बुझती। अतएव इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बिना रक्षणके (चारों ओर काँच) और वायुमें रक्खे हुए दीपकी ज्योति अस्थिर और नश्वर है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि वायुके वेगमें रखनेसे दीपक बुझता है, तो उसको वायुरहित स्थानमें ले जानेसे क्यों नहीं रक्षा हो सकती ? परंतु रसायन-शास्त्रका अध्ययन हमें बताता है कि दीपकके जलनेके लिये वायुमें निहित ऑक्सीजन (Oxygen) का होना अनिवार्य है। वही वायु अधिक मात्रामें होनेसे उसकी मृत्युका कारण बन सकती है। इसलिये वायुका आवश्यक परिमाणमें ही होना उचित है, उससे अधिक नहीं।

दूसरे प्रकारसे यह भी कहा जा सकता है कि मानव-जीवन दीपककी भाँति और निद्रा, आहार इत्यादि नित्य कर्म वायुके झोंकेके समान है। जिस प्रकार दीपज्योतिकी स्थिरताके लिये उचित परिमाणमें वायुका होना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार मानवजीवन (दीपक) में निद्रा, आहार इत्यादि कर्मों (वायु) का उचित मात्रामें होना अनिवार्य है। अगर इसके विपरीत, मानव-जीवनमें इन अनिवार्य कर्मोंको आवश्यकतासे अधिक स्थान दिया जाता है तो मृत्यु निःसंदेह है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानव-जीवनमें निद्रा-आहार इत्यादिका उपयोग उचित मात्रामें अवश्य होना भी चाहिये; क्योंकि इनके बिना सामान्य मनुष्य-जीवनरक्षा भी सम्भव नहीं है।

मनुष्यके स्वभावका नियन्त्रण त्रिगुण—सत्त्व, रज तथा तमके समुचित मिश्रणद्वारा होता है। इनमेंसे किसी भी विशिष्ट गुणकी प्रधानता होनेसे, मानव-स्वभाव भी वैसा ही बनता है। अतः कुछ मनुष्योंमें सत्त्वगुण प्रधान होता है, कुछमें रजोगुण दूसरे दोनों गुणोंसे अधिक मात्रामें होता है तथा शेषमें तमोगुण मुख्य रहता है। मनुष्यका आचार, विचार एवं व्यवहार भी इन गुणोंकी मात्रापर निर्भर रहता है तथा इन्हींके कारण आशा, निराशा, ममता, मोहजाल इत्यादिसे ग्रसित होकर मनुष्यको विविध व्याधियोंके द्वारा पीड़ित होना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप वह कभी-कभी बड़े दुर्भाग्यमें फँस जाता है। ऐसे समयमें मनुष्यमें निहित सत्त्व-गुण थोड़ी मात्रामें होनेपर भी, चेतावनी देता रहता है; परंतु मनुष्यका इस चेतावनीको मानना या न मानना दूसरे रज और तमोगुणकी मात्रापर निर्भर रहता है। इस प्रकार यदि सात्त्विक प्रवृत्ति (दीपक-) को आशा, प्रत्याशारूपी वायुके झोंकेमें रख दिया जाय, तो उसका परिणाम क्या हो सकता है ?

परमार्थके पथपर चलनेवाले साधकको विषयोपभोगरूपी वायुके झोंकेके बीच रहकर विवेकरूपी काँचसे अपनी जीवन-ज्योतिकी रक्षा करते हुए अपने गन्तव्य पथपर आगे बढ़ते रहना चाहिये। विवेक साथ रहनेपर पतनका—नाशका डर नहीं रहेगा।

एक और ढंगसे विचार करनेसे यह भलीभाँति प्रतीत होता है कि दीपकके जलते रहनेके लिये केवल उचित परिमाणमें वायुकी और प्रचण्ड वायुसे बचनेकी ही आवश्यकता नहीं है, उसके साथ-साथ तेलकी भी उतनी ही परम आवश्यकता है। जैसे-जैसे तेल समाप्त होता जाता है, वैसे-वैसे ही दीप-प्रभाको जीवित रखनेके लिये अधिक तेलकी आवश्यकता होती है। ऐसा करनेसे वह दीपक रोशनी देता रहेगा तथा अपने नामको सार्थक करेगा। परमार्थपथके मार्गपर अग्रसर होनेवाले पथिकको भी अपनी जीवन-ज्योतिको जलाते रहनेके लिये लगातार साधनारूपी तेलकी आवश्यकता है। ऐसा साधनसम्पन्न साधक अपने अमूल्य ज्ञान-प्रकाशसे स्वयं तो अपने जीवनको ज्ञानज्योतिसे उद्दीप्त करता ही है, वह उस ज्ञानका समस्त संसारमें प्रसार करता है। इतना होनेपर भी प्रकृतिके अनिवार्य नियमानुसार काल-पुरुषके हाथसे एक-न-एक दिन वह ज्योति अवश्य बुझेगी। पर ज्योतिधाराको कायम रखनेके लिये इसके बुझनेसे पहले ही इसीके समान अन्य प्रकाशमान दीपोंको प्रज्वलित करना चाहिये। इस प्रकार करनेपर ज्योति-परम्पराकी रक्षा हो सकती है और ज्योति (जीवन-ज्योति) शाश्वत-सी प्रतीत होती है।

उपसंहारमें हम यह कह सकते हैं कि संत पुरन्दरदास-जीके द्वारा कथित इस छोटेसे सूत्रमें मानव-जीवनमें, मानव-जीवनके विश्लेषणमें, मानव-जीवनकी उपयोगितामें और मानव-जीवनके मार्गदर्शनमें बड़ी सहायता मिलती है और यही 'गागरमें सागर' भरनेकी सूत्रसाहित्यकी परम्परा है।

गौ-रहस्य

(लेखक—डा० श्रीमानसिंहजी के० एस० ...)

गो शब्द अनेकार्थी है। उसका प्रयोग अनेक रूपोंमें पाया जाता है। जैसे—गौ, गोचर, गोरस, गोरख, गोरखी, गोग्मी, गोहद इत्यादि-इत्यादि। तुलसीदासजीने गो शब्दको इन्द्रियके अर्थमें भी प्रयुक्त किया है—

> बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
> निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

अंग्रेजीमें भी गो (Go) शब्द है, जो इसी प्रकारका अर्थ रखता है।

जहाँतक हमने समझा है, वेद सारे विश्वको 'गो-मय' कहते हैं। जब आदिपुरुष अपने-आपमें स्थित रहता है तब 'गो' नामकी कोई वस्तु नहीं है। जब शक्तिके कारण उसमें स्पन्दन होता है तब चेतनशक्ति समस्त दिशाओंका निर्माण करती है। उस स्पन्दनके साथ ही एक ध्वनि होती है जो अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना करती, स्वयं सूक्ष्मातिसूक्ष्म आवरणमें विद्यमान रहती है। स्पन्दनके साथ उत्पन्न हुआ शब्द और दिशाओंका जो विस्तार है, वही आदि गौ है।

वेदोंमें कथा आती है कि प्रथम गौ ब्यायी और उसका बछड़ा रँभाया। देवगण तत्क्षण ही उस ध्वनिकी खोजमें तत्पर हो गये, किंतु आजतक वे उस ध्वनिका आदि और अन्त न पा सके। यहाँ गौ ब्यानेका अर्थ है—सम्पुटका तुलना और यह ध्वनि वही 'अनाहत नाद' है, जिसकी महिमा वेदोंमें नित्य और अनन्त कहकर गायी गयी है।

कबीर साहबने अनाहत नादकी जो सूक्ष्मातिसूक्ष्मा ध्वनि है, इसीको 'नित्य' कहा है—

> जाप मरै अजपा मरै अनहदहूँ मरि जाय।
> सुरति समानी शबद में, ताहि काल नहिं खाय॥

वेदोंमें कथा आती है कि एक बार देवासुर-संग्राम हुआ। जिसमें देव पराजित हो गये। स्वर्ग तो देवोंको छोड़ना ही पड़ा, पृथ्वीपर भी वे स्थान न पा सके। पातालमें भी राक्षसोंने उनका पीछा न छोड़ा। अन्ततः वे इस गो-वत्सकी ध्वनिको पकड़कर उसमें गुप्त हो गये। वहाँ दानवोंकी गति न होनेसे उनकी रक्षा हुई। तभीसे देवगण इस ध्वनिका अनुसंधान करते रहे हैं और यह ध्वनि उनके गोपन होनेकी एवं संरक्षणकी आधार बन गयी। तात्पर्य यह है कि परम-पुरुष और आदि प्रकृतिके संघर्षसे ही यह सृष्टि उत्पन्न हुई और साथ-ही-साथ पैदा हुई एक ध्वनि, जिसे 'प्रणव' कहते हैं। प्रणव दो प्रकारका है—आहत और अनाहत। आहत प्रणवका आदि और अन्त होता है, किंतु अनाहतका नहीं। जिन ऋषि, मुनि और योगियोंने काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि विषयोंसे घबराकर मनसहित प्रणवकी शरण ली और उसमें लय हुए, वे सदा-सर्वदाके लिये इन राक्षसोंके भयंकर जालसे मुक्त हो गये। इस सम्बन्धमें हम वेद और उपनिषद्के प्रमाण देते हैं—

> पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि।
> वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ॥
> (अथर्ववेद ९।९।६)

मैं अपरिपक्क बुद्धि और सच्चे मनसे पूछता हूँ, क्योंकि देवताओंके इन लोकोंको मैं नहीं जानता। आप ज्ञानी सर्वज्ञ हैं। सबके आधारभूत कालमें, कपड़ा बुननेके सदृश सात तन्तुओंको बुनते हैं। अर्थात् सात छन्दोंसे ओतप्रोत वेदोंका पाठ करते रहते हैं। ये सप्त ध्वनि आदिकालसे अनादि हैं।

> इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
> शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः॥
> (अथर्ववेद ९।९।५)

'यहाँ उपस्थित आप बतायें, आपमेंसे जो कोई भी अरे! जानता हो उस नागदेव (चेतनशक्ति) रूपी प्राप्तव्यके गुप्त पदको। शिरवत उस उत्कृष्ट देवकी गायें दूध देती हैं और उस देवके रूपको उनसे छिपाये हुए हैं और आप लोगोंकी तर्पणादि उदक-क्रियाओंसे पानी पीते हैं।'

इसका भावार्थ यह है—

ब्रह्म वरेण्य है, परंतु अपनी शक्तिमें छिपा है। यह शक्ति देवी चेतन है, अचेतन नहीं। उनकी किरणरूपी गायें (गो-रश्मि) अर्थात् शक्तियाँ जो संसारके सब भोग-रूपोंमें दूध दुहती हैं और मनुष्योंके तर्पणसे पानी पीकर मानो तृप्त होती हैं, उस ब्रह्मका गुप्त पदका साक्षात्कार करायें। (जिज्ञासु शिष्य गुरुसे पूछते हैं।)

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥

(अथर्व० ९ । ९ । ९)

यह जगज्जननी यथेष्ट सृष्टि उत्पन्न करनेकी दक्षताको धारण करनेमें युक्त हुई। उसका गर्भ अन्तरिक्षमें ठहरा। वत्सने शब्द किया और फिर देखा कि वह शब्द तीनों योजनाओंके लिये विश्वरूप था।

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥

(अथर्व० ९ । ९ । १०)

तीन माताओं और तीन पिताओंको धारण करनेवाला यह पुत्र सर्वोत्कृष्ट रूपमें स्थित हुआ। उन माताओं-पिताओंने उसकी असली माँको ग्लानि नहीं पहुँचायी। अबतक दिव्य लोकोंमें उस वाणीका जो सर्वार्थपूर्ण है, अल्पार्थ लगाकर देव विचार-विमर्श किया करते हैं।

भावार्थ यह है—

तीन माताएँ—इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति एवं तीन पिता तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण कहे जा सकते हैं। यह बालक समष्टि प्राणरूप हिरण्यगर्भ है। इसकी वाणी प्रणवसहित वेद है, जो सर्वज्ञानपूर्ण है। किंतु सब लोग अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार अपना अलग-अलग अर्थ लगाते हैं और समझनेके लिये विचारविमर्श करते हैं। चित्-शक्ति आदिशक्ति है, जिसमें तीन गुणके अनुसार तीन शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं—तमोगुणसे इच्छा, रजोगुणसे क्रिया और सत्त्वगुणसे ज्ञान। पहले शब्दकी, फिर उससे रूपात्मक जगत्की सृष्टि होती है।

पुराणोंमें गौका अर्थ भगवान् श्रीकृष्ण और गो-लोकका अर्थ उनका वृन्दावन लेते हैं। कृष्णोपनिषद्में कृष्ण शब्दका अर्थ है—कृष्ण अर्थात् बंसीकी ध्वनिसे सारे विश्वकी चिति—चैतन्य शक्तिको जो आकर्षित करे वह। बंसीकी ध्वनिसे आकर्षित होनेवाली चैतन्य-धाराएँ ही गौ हैं और इस आकर्षणके द्वारा जो आनन्दकी अनुभूति करता है वही एक मानेमें मन—गोप है। सूक्ष्म इन्द्रियाँ, जिनके द्वारा ये अनुभूतियाँ सम्भव हैं, वे ही गोपियाँ हैं। श्रीकृष्णका वह गोलोक अथवा वृन्दावन जिसमें श्रीकृष्णकी रासलीलाका वर्णन है, नित्य है, अनन्त है, इसीलिये वह सत्य है। राधा आदिशक्ति हैं। जो कभी कृष्णसे भिन्न नहीं हैं। जिनकी आराधना श्रीकृष्ण करते हैं और वे श्रीकृष्णकी अनन्य आराधिका हैं।

राधाकी उपासनाके बिना गोलोककी प्राप्ति असम्भव है। ऐसा 'राधोपनिषद्' कहता है। अर्थात् यह राधा ही परम आह्लादिनी प्रेमानन्दस्वरूप भगवान्की आदिशक्ति हैं। शक्तिके द्वारा ही शक्तिमान्की प्राप्ति सम्भव है, इसीलिये प्रथम शक्तिकी उपासना करनी पड़ती है। उपनिषदोंमें कथा आती है कि 'एक बार देवासुर-संग्राम हुआ, जिसमें देव विजयी हुए। विजयोत्सव मनाते हुए इन्द्रने एक सभा बुलायी। उसमें प्रत्येक देवसे विजयमें उसका क्या सहयोग रहा यह पूछा। देवगण विजयमदसे मत्त थे। अतः प्रत्येकने सत्यकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर आत्मप्रशंसा की। भगवान् परम कृपालु हैं। अपने प्रियपात्र देवोंका यह मानसिक पतन देखकर वे उस स्थानमें एक यक्षके रूपमें उपस्थित हुए। देवराजने उनका पता लगानेके लिये पहले अग्निको, फिर पवनको भेजा। पवनके पूछनेपर प्रत्युत्तरमें उनका नाम पूछा। पवनने गर्वोक्ति की कि वह त्रिलोकमें प्रसिद्ध पवन है और बड़े-से-बड़े पर्वतको क्षण-मात्रमें उड़ा सकता है। यक्ष हँसा और एक तृण फेंककर उसे उड़ानेको कहा। पवन अपनी समस्त शक्तियाँ लगाकर हार गये किंतु तृणको न उड़ा सके। पवन मौनमुख लौटे और अपने स्थानपर जा बैठे। इन्द्रके पूछनेपर केवल इतना कहा कि यह यक्ष कुछ बतलाता नहीं है। एकके बाद एक करके सब देवता गये और असफल होकर लौट आये। किसीने भी अपनी पराजयकी बात स्वीकार न की, ऐसा हो उठा था उनका दम्भ। अन्तमें देवराज स्वयं गये और तब यक्ष अन्तर्धान हो गया एवं भवानी माँ अपनी परम पुनीत आभाके साथ देवराजके सम्मुख प्रकट हुई। उन्होंने देवराज इन्द्रको बताया कि यह यक्ष स्वयं भगवान् थे और चूँकि स्वयं इन्द्र भी उनके साक्षात्कार करनेकी पात्रता नहीं रखते थे अतएव माँने उन्हें अनुगृहीत किया है। उन्होंने देवोंको बुलाकर उनके अहंकारकी भर्त्सना की। देव लज्जित हुए और उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की।' तात्पर्य यह है कि भगवान्से मिलनेके लिये इस आद्याशक्तिका अनुग्रह आवश्यक है।

राधास्वामीमतप्रवर्तक कहते हैं—

सत नाम धुनि अब कहूँ खोली। बीन बाँसरी ध्वनि जहँ बोली॥

और कहते हैं—

बोलू री राधा-प्यारी बंसी, क्यों तरसावत जान।

जहाँ यह ध्वनि है, वही वृन्दावन, गोलोक अथवा सतलोक है। जो इस रहस्यकी अनुभूति करता है, वही अन्तमें आत्मासे एकतत्त्व होता है और ऐसा पुरुष ही देहरूपमें जगत्के लिये गुरु है। एक जगह और कहते हैं—

हे राधा तुम गति अति भारी।
हे स्वामी तुम धाम अपारी॥

महात्मा चरणदास कहते हैं—

हम हैं दासी कृष्ण की, राधा हमरा नाम।
स्वामी कृष्णा जब मिले, तब पावें बिश्राम॥

एक और महात्माने लिखा है—

निरंजन वनमें साधू एक रमता है॥
पर्वत ऊपर गऊ चरावै उसका दही जमाता है।
माखन माखन आपहि खावे छाछ जगतको देता है॥
कागदकी एक पुतली बनाई उसका नाच नचाता है।
आपहिं गावे आप बजावे आपहिं तान लगाता है॥
निरंजन वनमें साधू एक रमता है॥

इसी गोलोकके सम्बन्धमें लेखकने करीब ३० वर्ष पूर्व एक पद्य लिखा था, जो पाठकोंके अवलोकनार्थ प्रस्तुत है। यह पद्य जून-जुलाई १९६१ को चरित्रनिर्माण-नामक पत्रिकामें प्रकाशित हो चुका है—

बस भेदी भेद बतावेंगे ये गली कहाँको जाती है।
दो प्राणोंको एकहि नारी, को कौन कहाँपर खाती है।
गोकुलकी गली निराली है, एक गऊ जहाँपर ब्याती है।
गगनामें अजब बदरिया इक, जो अमृत रस बरसाती है।
बिन बदन जहाँ उठती बानी, बहरी सुन मस्ताती है।
अंधी नित रास जहाँ देखे, प्रीतमके संग जुराती है।
माँ मार बापको मारै जो, हत्या नहीं उसको आती है।
गम कर्म कालकी है न जहाँ, इनको तो आती पाती है।
अनुभवकी गतियाँ 'मान' कहैं, जग बतियाँ नाहिं बताती है॥

ऐसे परम रहस्यमय गोलोककी प्राप्तिके लिये मानव-शरीर ही कारण है; बिना सात्त्विक जीवनके वृत्ति अन्तर्मुखी नहीं होती और सात्त्विकता ही मनुष्यता है। सात्त्विक जीवनके लिये गोरस अद्वितीय है। वेदमें इसका वर्णन इस प्रकार आया है—

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
(ऋग्वेद १०। ४२। १०)

गौओंका सहारा लेकर हम दुःख-दारिद्र्यका निवारण कर सकें और गौओंके द्वारा प्राप्त अन्नसे हम अशेष क्षुधाका निवारण करें।

अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र
कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम्।

'हे इन्द्रदेवता! मुझ स्तोताको आप गौ और जौसे युक्त सम्पत्ति दो। अन्न-धनसे सम्पन्न बनाओ।

आयुर्वेदमें गायके दूध, दही, घृत और मूत्रकी बड़ी महिमा गायी है। इन्हें अमृत कहा गया है। योगशास्त्रियोंका कथन है कि सप्तसागर और सप्तपर्वत मानव-शरीरमें ही हैं। सप्तसागरोंमें एक सागर क्षीरसागर है। इसको आचार्य बताते हैं कि यह वीर्यमें है। इसी वीर्यकी मनके अन्तर्मुखी होनेपर ऊर्ध्वगति हो जाती है, तभी महामाया कुण्डलिनी स्थायीरूपसे चक्रोंका वेधनकर शिवमें अवस्थित होती है। यही वह क्षीरसागर है, जिसमें भगवान् विष्णुका वास है। गोरस साधनके उत्कर्षमें अद्वितीय है। इस प्रकार गो हमारी संस्कृति, हमारे बल और विज्ञानका प्रतीक है।

ये तो हुई सूक्ष्म बातें। बाह्य स्थूलरूपसे भी देखा जाय तो गोमाताके हमपर बड़े उपकार हैं। परम स्नेहमयी, अनन्त धैर्यशीला, पृथ्वी माँकी तुलना गौसे की गयी है। तुलसीदास-जी लिखते हैं—

सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गो तनु धारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥

गायके बछड़ेका उपयोग हम खेतीमें करते हैं। गोरस, दही, घृतका भोजनमें, गोमूत्रका आयुर्वेदकी कई ओषधियोंमें उपयोग होता है। गोबरसे खाद बनता है। इतना ही नहीं, गायके मरनेके बाद उसके चमड़ेका उपयोग जूते बनानेमें होता है। तो जिसके ऐसे अनेकों उपकार हैं, उसका वध

परम कृतघ्नता है और रक्षा परम धर्म। वेद भी गोवधका निषेध करते हैं—

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥

भाग्यशाली धेनु! तू तृणका सेवन करनेवाली है। हमको भाग्यशाली बना। तू घास खाकर निर्मल जल पीनेवाली है।

उपर्युक्त मन्त्रमें गौको हिंसाके अयोग्य बताया है। नीचेके मन्त्रमें हिंसा न करनेका आदेश है—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

जो गोदेवी आदित्योंकी भगिनी, रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री और पयस्विनी है, उसकी हिंसा मत करना। यह बात मैंने मेधावी (बुद्धिमान्) मनुष्योंसे कही थी। अतः सारा विश्व गोमय होकर पृथ्वी गोरूप धारण करती है और अन्तमें हमारी गौ तो हमारा धन-धान्य-दुग्धादिसे पोषण करती है। यह बाह्य गौ उसी विश्वरूप गोका छोटा स्वरूप होकर सनातन धर्मकी माता है और सदैव रक्षा करने योग्य है। जो आसुरी दुर्गुणोंसे रहित तथा दैवी गुणोंसे युक्त है।

गोभक्तिका चमत्कार

(लेखक—श्रीरामेश्वरदयालजी श्रीमाली बी० ए०, साहित्यविशारद)

वर्तमानकालमें भौतिकताकी ओर प्रवृत्त मानव यद्यपि गो-सेवाकी महिमाको नहीं समझते, तथापि इधर जो अनुभव हुए हैं, उनके आधारपर गोके शरीरमें सभी देवताओंका निवास मानना पड़ता है।

आयुर्वेदप्रवीण वैद्यराज लक्ष्मणसिंहजीकी धर्मपत्नी श्रीमती गंगाकौरका देहावसान ५ अक्तूबर १९६० को हुआ। देहावसानके छः मास पूर्व इन्होंने वैद्यराजजीको बता दिया कि यद्यपि शारीरिक रूपसे मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, तथापि मेरा अन्तिम समय निकट है। वैसे तो वैद्यराज-जी परम धार्मिक हैं, परंतु पत्नीकी इस बातपर वे पूर्ण विश्वास नहीं कर पाये।

मृत्युके दो मास पूर्व श्रीमती गंगाकौरने पुनः अपनी मृत्यु-तिथि बतलायी और स्वयं पूर्णतः हरिभक्ति और गो-सेवामें लग गयी। २३ सितम्बर ६० को किसी बातके प्रसङ्गमें यही बात फिर दोहरायी गयी। मृत्युके दो दिन पूर्वसे राम और ॐका पाठ चलता रहा।

निश्चित समयपर श्रीमती गंगाकौर चेतनाशून्य हो गयी। वैद्यजीने कस्तूरी आदि ओषधियोंकी सहायतासे उन्हें पुनः चैतन्य-अवस्थामें लाकर पूछा—'देवि! योगी-यतियोंके लिये भी दुर्बोध मृत्युके आगमनका पूर्वाभास तुम्हें कैसे हुआ?'

श्रीमती गंगाकौरने उत्तर दिया—'यह सब गो-सेवाका प्रताप है। मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि मैं सीढ़ियोंपर जा रही हूँ। कुत्ते और कुत्तों-जैसे प्राणी मुझपर झपट रहे हैं और गो-समुदाय घेरा बनाकर मेरी रक्षा कर रहा है। एक प्राणी मुझे कह रहा है कि गायें तेरी रक्षा कर रही हैं, इसलिये तू जा और तेरे पतिकी शङ्का-निवारण कर आ।'

ऐसा कहकर उन्होंने आथणी (दही जमानेकी हाँडी) मँगवायी और वह सारा दही गोकी पुत्री (वत्सा) को खिलानेका आदेश दिया। फिर उन्होंने कहा कि मेरी माताजी आयेंगी और विकल होकर रोयेंगी। आप उन्हें रोने-कलपनेसे मना कर दीजिये और कहिये कि वे 'राम' या 'ॐ' नामका पाठ करें।

गायका दही खाते-खाते वे चिर-निद्रामें लीन हो गयीं।

अवतारोंका कालक्रम

(लेखक—श्रीविश्वम्भरनाथजी द्विवेदी)

अनेक लोगोंको यह भ्रम है कि मत्स्यावतार प्रथमावतार है और इसी भ्रान्त धारणाके कारण अवतारोंमें भी विकासवादकी अनर्गल कल्पना लोग करते हैं। अतएव आवश्यक है कि हम यह समझ लें कि पुराणोंके अनुसार भगवान्का कौन-सा अवतार कब हुआ है।

वर्तमान समयमें ब्रह्माका द्वितीय परार्ध चल रहा है और उसका यह श्वेतवाराह कल्प चल रहा है। पचास वर्षकी आयुको एक परार्ध कहा जाता है। ब्रह्माजीका एक दिन मनुष्योंके चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षका होता है। इसमें लगभग ७२ चतुर्युगी होते हैं। इतनी ही बड़ी ब्रह्माकी रात्रि भी होती है। ब्रह्माजीके दिनके समय सृष्टि रहती है और रात्रिके समय प्रलय हो जाता है, लेकिन इस प्रलयमें पृथ्वी-सूर्यादि ग्रहोंका नाश नहीं होता। केवल प्राणि-सृष्टिको ब्रह्मा अपनेमें अन्तर्हित कर सो जाते हैं। इस प्रकारके ३६० दिन-रातका ब्रह्माका एक वर्ष होता है और ऐसे सौ वर्षोंकी ब्रह्माकी आयु होती है। ब्रह्माकी आयु पूर्ण होनेपर जब ब्रह्माका लय होता है, तब महाप्रलय होता है अर्थात् पञ्चभूत अपने कारणमें लय हो जाते हैं और प्रकृति साम्यावस्थामें स्थित हो जाती है।

यह ब्रह्माका द्वितीय परार्ध है—इसका अर्थ है कि अबतक ब्रह्माकी आयुके ५० वर्ष बीत चुके हैं। इसका यह भी अर्थ हुआ कि अबतक ब्रह्माके सोलह हजार दिन बीते हैं और ब्रह्माकी उत्पत्तिसे अबतक सोलह हजार बार सृष्टि तथा प्रलय हो चुकी है।

वर्तमान कल्प जो ब्रह्माकी आयुके इक्यावनवें वर्षका प्रथम दिन है श्वेतवाराह कल्प है। इसमें भी २७ बार सत्ययुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग आये और गये। यह अट्ठाईसवीं चतुर्युगीका कलियुग चल रहा है। इसमें भी तीन युग बीत चुके हैं। अभीतक ब्रह्माके इस चालू दिनका दोपहर नहीं हुआ है।

अवतारोंका क्रम समझनेके लिये समयका यह विवरण ध्यानमें रखना अत्यन्त आवश्यक है। इस विवरणके ध्यानमें रहनेपर यह भ्रम किसीको नहीं होगा कि प्रलय समुद्रमें होनेवाला अवतार ब्राह्मी सृष्टिके आदिमें ही होना चाहिये। वह तो ब्राह्मी सृष्टिसे अबतकके होनेवाले किसी भी प्रलयके समय सम्भव है और उसका समय पुराणोंमें दिया हुआ है।

महाप्रलयके पश्चात् भगवान् नारायणके नाभि-नालसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई। भगवान् नारायण, ब्रह्मा, शिव, महाशक्ति और गणेश—ये एक ही सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वरेश्वर सगुण ब्रह्मके पाँच स्वरूप हैं। पाँच होते हुए भी परस्पर अभिन्न हैं। अतएव इन पाँचोंमें अवतार और अवतारीका भेद शास्त्र नहीं मानता।

१. ब्रह्मपुत्र—[सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और नारद]—ये पाँचों ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। यद्यपि ब्रह्माजीके मानसपुत्र और भी हैं कर्दमादि, किंतु ये पाँच आजन्म ब्रह्मचारी ज्ञान एवं भक्तिपरम्पराके प्रवर्तक हैं। भगवान्ने ही इन रूपोंमें अवतार धारण किया है। इस प्रकार आदिसृष्टिका प्रथमावतार इन पाँच रूपोंमें है।

२. हंस—सनकादिकोंको तत्वके विषयमें कुछ संदेह हुआ और उन्होंने ब्रह्माजीसे प्रश्न किया। सृष्टिकर्म-व्यग्र-चित्त ब्रह्माजी उस प्रश्नका समाधान नहीं कर सके। उस समय भगवान्ने हंसरूपमें अवतार लेकर सनकादि कुमारोंका समाधान किया।

३. वाराह—यह अवतार दो हुए हैं—एक ब्राह्मी सृष्टिके प्रथम कल्प (पाद्मकल्प) के प्रारम्भमें और दूसरा वर्तमान कल्पके प्रारम्भमें। पाद्मकल्पके प्रारम्भमें होनेवाला अवतार नील वाराहका है और इस कल्पके आरम्भमें होनेवाला अवतार श्वेतवाराहके रूपमें है। नील वाराहने ही पृथ्वीका उद्धार और हिरण्याक्षका वध भी किया था। श्वेतवाराहसे इन कथाओंका सम्बन्ध नहीं है।

४. यज्ञ—ब्रह्माजीके मानसपुत्र प्रजापति रुचि और स्वायंभू मनुकी पुत्री आकूतिसे भगवान्‌ने यज्ञके नामसे अवतार लिया था। यही स्वायंभू मन्वन्तरका मन्वन्तरावतार है। मनु जब अपनी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या कर रहे थे, उस समय असुरोंके आक्रमणसे उनकी रक्षा भगवान् यज्ञने ही की थी।

५. कपिल—ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि कर्दम और मनुपुत्री देवहूतिसे तत्त्वप्रसंख्यानके लिये भगवान्‌ने कपिलके रूपमें अवतार धारण किया।

६. नर-नारायण—धर्मकी पत्नी मूर्ति (महर्षि कर्दमकी कन्या) से नर और नारायण इन दो रूपोंमें भगवान्‌का अवतार धर्म और साधनाकी नित्य सुरक्षाके लिये है। इन दोनों रूपोंसे भगवान्‌ने बदरिकाश्रममें प्रलयान्त तप किया।

७. दत्तात्रेय—महर्षि अत्रि ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं और उनकी पत्नी अनुसूया महर्षि कर्दमकी पुत्री हैं। इस दम्पतिकी तपस्यासे प्रसन्न होकर त्रिदेव ही इनके यहाँ पुत्ररूपमें अवतरित हुए। इनमेंसे भगवान् विष्णुके अंशसे दत्त, ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा और शिवके अंशसे महर्षि दुर्वासाका प्राकट्य हुआ। अत्रि-पुत्र होनेके कारण दत्त ही 'दत्तात्रेय' कहलाते हैं।

८. नृसिंह—आदिदैत्य हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादको परित्राण देनेवाले भगवान् नृसिंहकी कथा प्रसिद्ध है।

९. ध्रुवके लिये—ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें दर्शन दिया।

१०. ऋषभ—स्वायंभू मनुके पुत्र प्रियव्रतके पौत्र हुए महाराज नाभि। उनके पुत्र होकर भगवान्‌का जो अवतार हुआ, उन्हें ऋषभदेव कहते हैं। यह अवतार वैराग्यकी चरम सीमाका आदर्श प्रदर्शित करनेके लिये हुआ था।

११. पृथु—प्रथम पाद्मकल्पके स्वायंभू मन्वन्तरकी प्रथम चतुर्युगीके त्रेतायुगके प्रारम्भमें ध्रुवके वंशमें भगवान्‌का यह अवतार हुआ। इस अवतारको आदिराज कहते हैं; क्योंकि पृथुने ही नगर-ग्राम आदिकी व्यवस्थित योजनाको जन्म दिया तथा राज्यकी स्थापना की एवं पृथ्वीको बराबर करके खेतीका प्रारम्भ किया।

नोट—यहाँतक भगवान्‌के अवतार पाद्मकल्पके प्रथम मन्वन्तर स्वायंभुव मन्वन्तरमें हुए हैं। इनका क्रम जो ऊपर दिया गया है, प्रायः वही है।

१२. हरि—पाद्मकल्पके चौथे तामस नामक मन्वन्तरमें हरिमेधा ऋषिकी पत्नी हरिणीसे भगवान्‌का यह अवतार हुआ। इस अवतारमें भगवान्‌ने गजेन्द्रको ग्राहके पाशसे मुक्त किया।

१३. कूर्म—पाद्मकल्पके छठे मन्वन्तरमें वैराज ऋषिकी पत्नी सम्भूतिसे भगवान्‌का एक अवतार अजित नामसे हुआ था। यह अंशावतार है। इन्होंने ही समुद्रमन्थनके समय कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलको अपनी पीठपर रक्खा। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि समुद्र-मन्थनके समय असुरोंके स्वामी प्रह्लादके पौत्र दैत्यराज बलि थे। इसलिये कूर्मावतारका क्रम जो लोग नृसिंहसे पहले मानते हैं, वे भूल ही करते हैं।

१४. धन्वन्तरि—समुद्रमन्थनके अन्तमें भगवान् स्वयं क्षीरसमुद्रसे अमृतकलश लिये धन्वन्तरिके रूपमें प्रकट हुए थे।

१५. मोहिनी–दैत्योंको मोहितकर देवताओंको अमृत पिलानेके लिये भगवान्ने मोहिनी रूप धारण किया था।

१६. वामन–दैत्यराज बलिसे तीन पद भूमि माँगकर उन्हें विराट्‌रूपसे बाँध लेनेवाले कश्यपनन्दन भगवान् वामनको ही उपेन्द्र भी कहा जाता है।

नोट–यहाँतकके सब अवतार सृष्टिके प्रथमकल्प पाद्मकल्पमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके बाद हुए हैं।

१७. मत्स्य–चाक्षुषकल्पके अन्तमें ब्रह्माजीके सो जानेपर ब्राह्मी रात्रिके प्रारम्भ होनेपर प्रलय-समुद्रमें भगवान्का मत्स्यावतार हुआ और राजा सत्यव्रतको उन्होंने इस प्रलय-समुद्रसे बचाया। यही राजा सत्यव्रत इस श्वेतवाराहकल्पमें वैवस्वतमनु हुए। ब्रह्माके मुखसे निकले वेदोंका हरण हयग्रीव नामक दैत्यने कर लिया था और प्रलय-समुद्रमें छिप गया था। भगवान् मत्स्यने उसे मारकर वेदोंका उद्धार किया।

१८. हयशीर्ष–हयग्रीवके द्वारा वेदोंका हरण होनेपर ब्रह्माजी जब दूसरी सृष्टिके प्रारम्भमें जगे तब उन्हें वेद विस्मृत हो गये थे। उन्होंने भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये यज्ञ प्रारम्भ किया। इस यज्ञमें हयशीर्षरूपसे भगवान् प्रकट हुए, जिनके श्वाससे वेदवाणी व्यक्त हुई।

नोट–आगेके अवतार वर्तमान श्वेतवाराह-कल्पके इस वैवस्वत-मन्वन्तरमें हुए हैं।

१९. परशुराम–इसी वैवस्वत मन्वन्तरके प्रथम चतुर्युगीके त्रेतायुगमें भगवान् परशुरामका अवतार हुआ।

२०. श्रीराम–वैवस्वत मन्वन्तरके वर्तमान अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके त्रेतायुगमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका अवतार हुआ।

२१. श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास–इस कलियुगके प्रारम्भसे कुछ पूर्व द्वापर युगमें वेदोंका चतुर्धा विभाग करनेवाले पुराणोंके प्रणेता भगवान् व्यासका अवतार हुआ है।

२२. श्रीबलराम व श्रीकृष्ण–श्रीकृष्णावतार स्वच्छन्दावतार है। यह कब होगा कोई नियम नहीं होता। द्वापरान्तका युगावतार श्रीबलरामका अवतार है। यह संयोगकी ही बात थी कि इसी कलियुगके प्रारम्भसे पूर्व लगभग ५००० वर्ष पहले भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ पृथ्वीपर पधारे थे।

२३. बुद्ध–यद्यपि यह विवादका विषय है कि पुराणोंमें जिस बुद्धावतारका वर्णन है वह गौतमबुद्ध ही हैं। लेकिन गीतगोविन्दके कर्ता जयदेवने गौतमको ही बुद्धावतार माना है।

२४. कल्कि–इस कलियुगके अन्तमें कल्कि अवतार होगा। कलियुगकी आयु चार लाख बत्तीस हजार वर्ष है। वर्तमान कलि संवत् ५०६५ है। अर्थात् कल्कि अवतार होनेमें अभी चार लाख छब्बीस हजार नव सौ पैंतीस वर्ष शेष हैं।

बसो मोरे नैननमें नँदलाल

बसो मोरे नैननमें नँदलाल॥
मोहनी मूरति साँवरि सूरति नैणा बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत उर बैजंती-माल॥
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भगतबछल गोपाल॥

मत्स्यावतार

(१)

प्रलय पयोधिमें विलीन तीन लोक हुए
तैरती थी राख कहीं दर्भ था न दूबा था,
चारों ओर ऊर्मियोंका आहव मचा था, बचा—
कालके हबाहबमें साहब न सूबा था।
चिन्तामग्न मनुका भविष्यत् नरत्व बीज
वह अमरत्व वहाँ जिंदगीसे ऊबा था,
गिरिगण मेरु डूबे, वरुण कुबेर डूबे
नाक वहीं डूबा मयनाक वहीं डूबा था॥

(२)

हिमकी हबेली अलबेली वसुधाके संग
खाँड गुड-मेली-सी गली है घुल करके,
पानीमें मिली है, युग-युगकी पुरानी सृष्टि
सोच रहे मनु लोचनोंमें अश्रु भर के।
तुङ्ग गिरि शृङ्ग-सी तरङ्गोंसे समावृत्त हो
डूब चले ज्यों ही वह मार्गमें अधरके,
भक्त को बचाने त्यों ही धाये करुणाके सिन्धु
दीनबन्धु पीन महामीन रूप धर के॥

(३)

नीर तमतोम सिन्धु-नीरमें प्रकट मत्स्य
कोटि सोम रविका प्रकाश ले अतुल था,
या कि व्योमचुम्बिनी विशाल जलराशिपर—
पथ छायापथका ही व्यक्त बिलकुल था।
पार करनेको या अपार पारावार वहाँ
दीप्तिमान् स्वर्णका महान् कोई पुल था,
या कि महासागर अथाह थाहनेके हेतु
रक्षित अमान मानदण्ड सुविपुल था॥

(४)

मथ उठा सिन्धु मीन-शृङ्ग मन्दराचलसे
पुच्छका प्रहार ज्वार जोरसे उठाता था,
क्षुब्ध मच्छ-कच्छपादि जलचर जन्तुओं-सा
शैलोंका समूह डूबता था उतराता था।
खोई मेदिनी पता पातालका रहा न कोई
नागोंसे तिमिङ्गलोंका दल टकराता था,
चार आननोंसे चतुरानन सुनाता स्तुति
मुखसे हजार शेषनाग गुन गाता था॥

(५)

देख अब्धि मन्दिरमें रूप इन्दिराका रम्य
आँखें महामीनकी पलक हीन हो गईं,
स्वागत सुबेषमें समागत पियाका कर
नत नयनोंसे वे पुलक पीन हो गईं।
कम्पको छिपाया हरिने था पुच्छ चालनमें
स्वेदकणिकाएँ शीकरोंमें लीन हो गईं,
स्पर्शसे प्रियाके हो अमंद गति मंद गई
मति महानन्द सिन्धुमग्न मीन हो गई॥

(६)

नौका जान व्यक्त हुई दिव्य एक नौका वहाँ
ऊर्मिने उठाके जहाँ मनुको बिठाया है,
सात ऋषियोंके साथ जीव-जीविकाके बीज
लेकर उन्होंने शीश प्रभुको झुकाया है।
सर्परज्जुओंसे बँधी नाव महामीन शृङ्ग
आगे बढ़ी मनुने विहार-मोद पाया है,
प्रश्नोंका उन्हींके समाधान जो महान् मिला
ज्ञान वही 'मत्स्य'का 'पुराण' कहलाया है॥

—साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

वैशाखके दो महान् दिवस

(लेखक—श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)

(१)

अक्षयतृतीया परशुराम-जयन्ती

वैशाख त्योहारोंका महीना है। इस मासमें गङ्गासप्तमी, नृसिंहचतुर्दशी आदि पर्वोंके साथ ही अक्षयतृतीया और परशुराम-जयन्तीका भी विशेष महत्त्व है। वैशाखके शुक्ल-पक्षकी तृतीया ही अक्षयतृतीया और परशुराम-जयन्ती दिवसके रूपमें प्रसिद्ध है। इसे 'युगादि तृतीया' भी कहते हैं। इसी तिथिको सत्ययुगका आरम्भ हुआ था।

अक्षयतृतीया सारे पापोंका नाश करनेवाली है। इसे पूर्वाह्णव्यापिनी (दोपहरके पूर्वकी तिथि) लेने या ग्रहण करनेका विधान है। मन्वादि तथा युगादि तिथि होनेके कारण इस दिन गङ्गास्नान, जप तथा हवनादि करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है और इससे प्राप्त होनेवाला फल वा पुण्य अक्षय होता है। अक्षयतृतीया नाम पड़नेका यही कारण है। देव तथा पितर—इन दोनोंसे सम्बन्धित कृत्योंमें कृष्णपक्षकी तृतीया अपराह्णव्यापिनी ली जाती है; किंतु शुक्ल-पक्षकी तृतीया अपराह्णव्यापिनी लेनेसे हव्यको देवता और कव्यको पितर ग्रहण नहीं करते।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने युधिष्ठिरसे अक्षयतृतीयाके सम्बन्धमें कहा था कि 'इस पुण्यतिथिको पूर्वाह्णमें स्नान, जप, तप, हवन, स्वाध्याय, पितृ-तर्पण तथा दान आदि जो भी शुभ कृत्य किये जाते हैं, उनका अक्षय पुण्यफल प्राप्त होता है।' इस सम्बन्धमें उन्होंने एक कथा भी सुनायी थी कि प्राचीन कालमें एक दरिद्र किंतु सत्यवादी तथा श्रद्धालु वैश्यने अक्षयतृतीयाके माहात्म्यको श्रवणकर उस दिन गङ्गा-स्नान, देवपूजन, पितृतर्पण आदि करके अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको सत्तू, दही, पंखा तथा मिष्टान्न आदि सामग्रियाँ दानमें दी थीं। इसके परिणामस्वरूप उसे अगले जन्ममें क्षत्रियके घरमें जन्म मिला और उसे प्रचुर धनधान्य-की प्राप्ति हुई। साथ ही उसकी वृत्ति पूर्ववत् धार्मिक बनी रही। ऐसा विलक्षण प्रभाव है इस अक्षयतृतीयाका।

अक्षयतृतीयाको लक्ष्मीसहित भगवान्का सविधि पूजन करना चाहिये। इस दिन ओलेके लड्डू और पंखे दान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और गङ्गास्नान करनेसे प्राणी सभी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। गङ्गास्नानके अनन्तर पितृ-तर्पण, देव (वासुदेव-) पूजन करना चाहिये। भोजन एक बार करना चाहिये। यव (जौ) से हवन, यवसे ही विष्णु का पूजन किया जाता है। ब्राह्मणोंको गेहूँ, जौ और चनेका सत्तू, जलपूर्ण घट, ओले, सर्व रस, पंखे, दही तथा ग्रीष्मोप-योगी चीजें दान देनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। घटदान करते समय—**'एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।'** से **'पितृभ्योऽक्षय्यमुपतिष्ठतु'** तक यह मन्त्र पढ़ना चाहिये।

धार्मिक दृष्टिकोणसे किये जानेपर भी यह पर्व सर्वव्यापी है। मन्दिरोंमें इस दिन भगवान्को सत्तूका भोग लगता है और उन्हें श्वेत वस्त्र धारण कराये जाते हैं। इसी दिनसे प्याऊ जल पिलाने बैठ जाते हैं और स्थान-स्थानपर पौसरे चलने लगते हैं। कहीं-कहीं तो ठण्डा शर्बत भी पिलाते हैं। वैशाखसे आषाढ़ मासपर्यन्त प्रायः नदी, तालाब, कुएँ—सभीमें जल कम होने लगता है—सूख जाता है। पशु-पक्षी और मनुष्य सभी प्राणी पिपासा और धूपसे व्याकुल होकर सुध-बुध खो बैठते हैं। ऐसे समयमें प्याऊ या पौसरेकी व्यवस्थासे सचमुच महान् पुण्य और उपकार होता है।

परशुराम-जयन्ती—भी इसी दिन मनायी जाती है। विष्णुके असंख्यावतारोंमें प्रमुख दशावतार शास्त्रकारोंने माने हैं। भगवान् परशुराम छठे अवतार माने गये हैं।

वैशाख शुक्लपक्षकी तृतीयाको एक प्रहर रात्रि व्यतीत होनेपर भगवान् परशुरामका जन्म हुआ था। उस समय पुनर्वसु नक्षत्रमें स्वग्रही होकर छहों ग्रहोंसे युक्त मिथुनराशिपर राहु स्थित था। इसी समय हैहयवंशके तत्कालीन पापी क्षत्रियोंके संहारार्थ रेणुकाके गर्भसे परशुरामका अवतरण हुआ। यह तिथि प्रदोष या प्रथम प्रहरव्यापिनी ग्रहण की जाती है और इसी समय परशुरामका पूजन करके निम्नलिखित मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान किया जाता है—

जमदग्निसुत वीर क्षत्रियान्तकर प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर॥

भगवान् परशुरामका नाम तो केवल 'राम' था; किंतु परशु धारण करनेके कारण वे परशुरामके नामसे प्रसिद्ध हुए। जमदग्निपुत्र होनेके कारण वे जामदग्न्य भी कहे जाते हैं। परशुरामजीमें ब्राह्मण होनेपर भी, क्षत्रियोचित गुणोंका भण्डार था। उनका क्रोध तो सर्वविदित ही है। जनकपुरमें

धनुषयज्ञके अवसरपर लक्ष्मण तथा रामचन्द्रसे हुआ परशुराम-संवाद कितना रोमाञ्चकारी है ।

एक बार विप्रद्रोही हैहयनेता कार्तवीर्य सहस्रार्जुन जंगलमें सदल-बल शिकार खेलते-खेलते महर्षि जमदग्निके आश्रमपर पहुँच गये । महर्षिने उनका समुचित स्वागत-सत्कार किया । उनके पास नन्दिनी नामकी एक ऐसी विलक्षण गाय थी, जिससे जंगलमें भी मङ्गल होता था । कार्तवीर्यका स्वागत भी इसी गायके माध्यमसे हुआ । यह देखकर कार्तवीर्यमें लोभ उत्पन्न हुआ और उसने नन्दिनीका अपहरण कर लिया । क्षुब्ध होकर परशुरामने कार्तवीर्यका पीछा किया । अन्ततोगत्वा परशुरामकी विजय हुई और कार्तवीर्य सेनासहित मारा गया । जब महर्षि जमदग्निने यह बात सुनी, तब वे अत्यन्त दुखी हुए और परशुरामके पराक्रमकी सराहना करते हुए उन्होंने देवताके प्रतिनिधिस्वरूप मान्य राजाका वध करनेके अपराधमें प्रायश्चित्तस्वरूप तीर्थयात्रा करनेकी परशुरामको आज्ञा दी ।

पिताकी आज्ञा शिरोधार्यकर परशुराम चल पड़े; किंतु इधर कार्तवीर्यके पुत्रोंने अपने पिताका बदला लेनेकी तैयारी की । महर्षि जमदग्नि हवन कर रहे थे । उसी समय उन लोगोंने उनके मस्तकका छेदन कर डाला । परशुरामकी माता रेणुकाने आहें भरते हुए परशुरामको पुकारा और इक्कीस बार अपनी छाती पीटी । दैवात् परशुराम वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने हैहयवंशके क्षत्रियोंसे पृथ्वीको इक्कीस बार शून्य कर डालनेका कठोर व्रत लिया ।

यह भी प्रसिद्ध है कि अश्वमेधीय यज्ञके अश्वकी खोजमें घूमते हुए कुछ क्षत्रिय राजकुमारोंने जमदग्निका अपमान किया था । इसी कारण परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीसे क्षत्रियोंका संहार किया । जो भी हो उस युगका वातावरण बहुत दूषित हो चुका था, परशुराम तो निमित्त बन गये । क्षत्रियोंका नाश स्वयं उनकी करनीके कारण ही हुआ । एक बार परशुरामने क्रुद्ध पिताकी आज्ञासे अपनी माताके मस्तकको काट डाला था और पुनः पितासे वर प्राप्तकर माता रेणुकाको जीवित भी कर दिया था । ऐसे थे परशुराम ।

शास्त्रोंमें परशुराम-जयन्ती मनानेका आदेश मिलता है; किंतु श्रीरामनवमी तथा श्रीकृष्णजन्माष्टमीकी भाँति इसका उतना प्रचार नहीं है । यद्यपि दशावतारोंमें गणना होनेके कारण भारतके सभी मन्दिरोंमें परशुराम-जयन्ती मनायी जाती है; किंतु मथुरा तथा पतितपावनी हमारी काशीमें इसका व्यापकस्वरूप देखा जाता है । कहते हैं कि आसामके आगे—जहाँ प्रसिद्ध कामाख्या देवी हैं, उस प्रदेशमें महर्षि जमदग्निका आश्रम है । वहाँ परशुरामके मन्दिर भी हैं और लोगोंमें उनके प्रति विशेष आस्था देखी जाती है । दक्षिणके कोंकण नामक स्थानमें ऐसी प्रसिद्धि है कि वहाँ परशुरामने अपने बाणोंसे समुद्रको पृथ्वीके रूपमें बदल दिया था । यही कारण है कि परशुरामक्षेत्रके नामसे यह स्थान आज भी प्रसिद्ध है । यह भी सत्य है कि वहाँ कभी अकाल नहीं पड़ता । दक्षिणदेशीय अनेक ब्राह्मण परशुरामके भक्त हैं । रत्नागिरी जिलेमें भी परशुरामका एक विशाल मन्दिर है । जहाँ प्रतिवर्ष परशुराम-जयन्ती बड़े समारोहसे मनायी जाती है ।

(२)

नृसिंह-जयन्ती और वैशाखी पूर्णिमा

वैशाख मासके अन्तिम दो दिन नृसिंहचतुर्दशी और वैशाखी पूर्णिमाके रूपमें प्रसिद्ध हैं । उक्त चतुर्दशी भगवान् नृसिंहसे सम्बन्धित है और पूर्णिमा भगवान् गौतमबुद्धसे । इन दोनों प्रमुख सांस्कृतिक पर्वोंका अपना महत्त्व है और इस लेखमें हम इसी विषयपर कुछ कहना चाहते हैं ।

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी भगवान् नृसिंहका जन्मदिन है । इसी तिथिको स्वाति नक्षत्र और प्रदोषकालमें सोमवारको नृसिंहावतार हुआ था । नृसिंहावतार और हिरण्यकशिपुकी कथा आबालवृद्ध सभी जानते हैं । हिरण्यकशिपुको यह वरदान प्राप्त था कि वह किसी भी समय और किसी भी प्रकार मारा नहीं जा सकता । किंतु वह कट्टर नास्तिक तथा तामसी प्रकृतिका था और उसका पुत्र प्रह्लाद भगवान्‌का अनन्य भक्त । अतः पारस्परिक विरोध स्वाभाविक था और यही कारण है कि हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको अनेक कष्ट दिये । उसे विषपान कराया गया, पहाड़से ढकेला गया, होलिकाग्निमें बैठाकर जलाया गया; किंतु उसका एक बाल भी बाँका न हो सका । अन्तमें निराश और क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको धमकाया और कहा—'बुला अपने भगवान्‌को ! कहाँ है वह !' प्रह्लादने उत्तर दिया—वह सर्वव्यापी है । खम्भकी ओर संकेतकर हिरण्यकशिपुने पूछा—'क्या वह इसमें भी है !' उत्तर मिला—'हाँ ।' और जब हिरण्यकशिपुने खम्भपर वेगपूर्वक तलवार चलायी, तब खम्भके दो टुकड़े हो गये और उसमेंसे भगवान् नृसिंह प्रकट हुए और इस प्रकार उन्होंने दैत्यराजका वध कर भक्तराजकी रक्षा की ।

नृसिंहचतुर्दशीका व्रत सभी वर्णके लोग कर सकते हैं। इससे समस्त पाप तथा असंख्य अहिंसा-दोष मिट जाते हैं और सौ कल्पोंतक स्वर्गवास मिलता है। यह व्रत करनेवालोंको मध्याह्नके स्वच्छ जलमें (नदीमें) वैदिक मन्त्रोंसे स्नान करनेके पश्चात् नृसिंह भगवान्‌को स्मरण करते हुए घर वापस आना चाहिये। घर आकर पृथ्वीको गोबरसे लीपकर और अष्टदलीय कमल बनाकर उसपर कलशस्थापनकर उसमें ताम्र तथा रत्न डालना चाहिये। उस कलशपर बाँसकी एक डलियामें चावल भरकर रखना चाहिये और भगवान् नृसिंह तथा लक्ष्मीजीकी मूर्ति स्थापितकर उसे पञ्चामृतमें स्नान कराना तथा वैदिक एवं पौराणिक मन्त्रोंसे षोडशोपचार पूजना चाहिये। यदि व्रत कामनापरक हो तो स्वर्ण, भूमि, गौ, तिल तथा वस्त्रसहित शय्यादान भी करना चाहिये। पूर्वोक्त दोनों मूर्तियाँ स्वर्णमयी हों, यह भी कहा गया है। तदनन्तर ब्राह्मणको भोजन कराना और उनको यथाशक्ति दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये। अन्तमें प्रार्थना करनेके बाद आचार्यको उसकी दक्षिणाके साथ उक्त स्वर्णमयी मूर्तियाँ देनेका विधान है और मध्याह्न-कालके अनन्तर बन्धु-बान्धवोंके साथ भोजन करनेका विधान भी।

भगवान् नृसिंह वा नरसिंह विष्णुके अवतार माने जाते हैं। उन्हें हम शक्ति तथा पराक्रमके प्रतीक देवता कह सकते हैं। विजयनगरके महान् पराक्रमशाली नरेशोंने भगवान् नृसिंहकी मूर्तिको अपना राज्यचिह्न बनाकर अनेक विशाल नृसिंहमन्दिरोंकी स्थापना की थी। मद्रासके घँटासाल तथा हम्पी नामक स्थानोंमें नृसिंहके अनेक विशाल मन्दिर हैं और वहाँ प्रतिवर्ष दूर-दूरके असंख्य यात्री पहुँचकर अपनी मान्यताएँ पूर्ण करते हैं। वहाँके अनेक ब्राह्मण तथा अन्य जातिके लोग नृसिंहको अपना कुलदेव मानकर उनकी आराधना करते हैं। दक्षिणभारतके वैष्णवमतके प्रवर्त्तका-चार्योंद्वारा स्थापित विष्णुके मन्दिरोंमें भी नृसिंहचतुर्दशी बड़े समारोहसे मनायी जाती है। वहाँ दीपोत्सव होता है और भगवान्‌की सवारी पालकीमें गायन-वादनके साथ निकलती है। मुलतान नगरमें भी मुख्य रूपसे यह उत्सव मनाया जाता है। कहते हैं कि हिरण्यकशिपु यहींका राजा था और वर्त्तमान प्रह्लादगढ़ी उसका राजमहल था। जयपुरके खण्डेला नामक स्थानमें भगवान् नृसिंहकी बारह भुजाओंवाली एक अद्भुत मूर्त्ति है। रामलीला और रासलीला आदिकी भाँति हमारे तीर्थ-स्थानोंमें नृसिंहलीला भी होती है और मालवामें भगवान् नृसिंहकी सवारी पालकीमें निकलती है। नृसिंहलीला मुख्य रूपसे हमारी पुण्यपुरी काशी (वाराणसी), अयोध्या और मथुरा नगरीमें होती है। काशीमें प्रह्लादघाटपर नृसिंहचतुर्दशी-के लगभग यह आयोजन प्रतिवर्ष होता है। इस पर्वसे हमें जहाँ ईश्वरकी अद्भुत शक्तिका स्मरण होता है, वहीं अधर्म और अनाचारसे बचकर कर्त्तव्यपथपर अग्रसर होनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है।

दूसरे दिन वैशाखी पूर्णिमा या बुद्धजयन्तीका महान् पर्व पड़ता है। इसी दिन भगवान् गौतम बुद्धका जन्म हुआ था, इसी दिन उन्होंने बुद्धगयामें बोधिवृक्षके नीचे बुद्धत्व प्राप्त किया और इसी दिन उनका महानिर्वाण हुआ।

बौद्धजगत्‌में वैशाखी पूर्णिमाका यह महान् पर्व बड़े पुण्य और महत्त्वका माना जाता है। भगवान् बुद्धके अतिरिक्त इस तिथिका सम्बन्ध महानगरी लंकासे भी है। इसी दिन लंकाके अनेक बौद्ध-मन्दिरों, स्तूपों तथा मठोंकी स्थापना हुई और वहाँके अनेक नरेशोंका राज्याभिषेक हुआ। अन्य बौद्ध देशोंकी अपेक्षा लंकाके लिये इस तिथिका विशेष महत्त्व इसलिये भी है कि इसी दिन वहाँ दीपोत्सव मानाया जाता है। वहाँ कार्तिककी अमावस्याको दीपावली नहीं मनायी जाती। लंकाकी वैशाखी पूर्णिमा अवर्णनीय ही है। वैशाख मासमें जब भारतमें लूका साम्राज्य रहता है, तब लंकानिवासी समुद्र-तटकी उत्तुंग लहरोंसे वायुका स्पर्शानुभवकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं। वैशाखकी शीतल और सलोनी वायुके प्रभावसे वे झूमने लगते हैं। हरी-भरी पुष्प-बेलों तथा नारियल और सोपारी-के विशाल वृक्षोंवाले बगीचोंसे सुशोभित उसकी छटा वैशाखी पूर्णिमाके दिन निराली ही होती है। नारियलके पत्तोंसे निर्मित लघु झोपड़ियोंसे लेकर महान् अट्टालिकाएँ, मठ और मन्दिर—सभी जगमगा उठते हैं। रात्रिके समय एक भी कोना प्रकाश-हीन नहीं रहने पाता। वहाँ बिजलीकी सजावट भी दर्शनीय होती है। वहाँके उल्लासमय वातावरण और आनन्दका अनुभव कर हम यह कह सकते हैं कि वस्तुतः बौद्धदेशोंपर भारतीय संस्कृतिका कितना अधिक और व्यापक प्रभाव पड़ा है।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

हेनरी जेम्स और आँसू

नवयुगके अंग्रेजी उपन्यासकारोंमें हेनरी जेम्स (१८४३–१९१६) का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। संयोगवश उनका अपने एक पड़ोसीसे मनमुटाव हो गया, जो यहाँतक बढ़ा कि आपसी बोलचाल, दुआ-सलाम सब बंद हो गयी। कभी भूलसे एक दूसरेके सामने आ भी जाते, तो मुँह फेर लेते थे। एक दिन उस पड़ोसीके किसीकी मृत्यु हो गयी। लोगोंने आश्चर्यसे देखा हेनरी जेम्स सारे भेद-भावको भुलाकर अपने पड़ोसीको सान्त्वना देनेके लिये उपस्थित थे। एक महाशयसे न रहा गया। उन्होंने चकित होकर पूछा, 'जेम्स! तुम कहाँ?' 'जहाँ आँसू वहीं मैं' जेम्सने उत्तर दिया—'यह कैसे सम्भव है कि आँसू गिरें और जेम्स पोंछने न जाय।'

(२)

अनजानमें कम कीमतपर वस्तु बेच देना मूर्खता है तो जानकर कम कीमतपर खरीद लेना अपराध है

हेनरी थोरो (१८१७–१८६२) अमेरिकाके प्रधान चिन्तक एवं विचारक माने जाते हैं। इन्हींका एक निबन्ध है—Civil Disobedience (सविनय आज्ञाभङ्ग), जिसमें इन्होंने सत्याग्रहकी रूप-रेखा दी है। महात्मा गान्धी थोरोसे बहुत प्रभावित थे और इन्हींके निबन्धके आधारपर उन्होंने अपने १९३० वाले आन्दोलनका नाम (Civil Disobedience Movement) सविनय आज्ञाभङ्ग आन्दोलन रक्खा था।

थोरो स्वयं भारतीय विचारधारासे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने अपने निबन्धोंमें जगह-जगह कालिदास, विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण इत्यादिके उद्धरण दिये हैं। भारतीय विचारधारासे ही प्रभावित होकर वे लगभग दो वर्षतक जंगलमें आश्रम बनाकर रहे। इन्हीं दिनों उन्होंने एक किसानसे कुछ जमीन खरीदी। सौदा बहुत लाभका था। किसानको इससे पश्चात्ताप हुआ कि उसकी जमीन सस्ते दामोंमें निकल गयी। वह अगले दिन रात्रिमें थोरोके पास आया और गिड़गिड़ाते हुए कहने लगा—'महाशय! वह जमीनका सौदा वापिस कर दें। मेरी स्त्री बहुत नाराज हो रही है।' 'कहीं बिका हुआ सौदा वापिस होता है?' थोरोने उत्तर दिया। 'महाशय! आप उचित हर्जाना ले लें।' मैं गरीब आदमी हूँ। मेरे पास इससे अधिक नहीं है।' दस डालर थोरोकी ओर सरकाते हुए किसानने कहा।

'जब तुम गरीब हो तो ये दस डालर क्यों दे रहे हो?'

'अपनी मूर्खताका दण्ड। अनजानेमें बाजारभावसे कमपर अपनी चीज बेच देना मूर्खता नहीं तो और क्या है।' किसानने कहा। 'अनजानेमें बाजारभावसे कमपर अपनी चीज बेच देना मूर्खता है तुम्हारी निगाहमें, तो फिर बताओ जान-बूझकर उचित मूल्यसे कममें कोई चीज ले लेना क्या है! कृषक! तुम जो कुछ कहते हो वह सर्वांशमें तो ठीक नहीं है, फिर भी मैं समझता हूँ कि मैंने जान-बूझकर उचित मूल्यसे कममें तुम्हारी जमीन लेकर अपराध किया है। धन्यवाद! तुम्हारी जमीनका सौदा वापिस और तुम अपने ये दस डालर भी लेते जाओ। गलती मेरी और हर्जाना तुम दो?' थोरोने उत्तर दिया।

—राजेन्द्रप्रसाद जैन

(३)

एक अन्नदाता

बात उस समयकी है, जब देशमें अनाज-बंदी जारी थी। हमारा परिवार काफी बड़ा था। रसदकी दूकानसे सप्ताहमें एक बार अनाज मिलनेकी व्यवस्था थी। एक सप्ताहके लिये हमें जो अनाज मिलता, वह हमारी आवश्यकताको देखते बहुत ही कम होता था। बड़ी कठिनाईसे तीन-चार दिन चलता। शेष दिन अत्यन्त अभावमें गुजरते। पेटके लिये बाध्य होकर ब्लैक मार्केटकी शरण लेनी पड़ती थी। दुगुने दाम देकर भी काम बन जाय तो बड़ा भाग्य—ऐसी अवस्था थी। पर वैसा भी कठिनतासे हो पाता था।

दिन-प्रतिदिन पैसोंका मूल्य घटता जा रहा था। बदलेमें अनाजके भाव बढ़ते जा रहे थे। भूखसे मरनेवाले मनुष्योंका रुपयोंसे पेट नहीं भरता। उन्हें तो आवश्यकता है एकमात्र अन्नदेवकी। अतएव मुँह-माँगे दाम देकर भी सहजमें पेट-पालन नहीं होता था। पर ब्लैक-मार्केटसे अनाज मिलनेमें भी विघ्न आने लगे। कुछ समय बाद पैसा भी अन्न-प्राप्ति करवानेमें असमर्थ होने लगा। अन्तमें एक दिन वह समय आ ही गया, जिसका भय मेरे मनमें पहलेसे ही बना हुआ था। उस दिन हमारे घरमें अनाजका एक दाना तक न था। राशनका अनाज किसी तरह कलतक चला था। अब बिना सप्ताह बदले वहाँ अन्न मिलनेकी गुंजाइश नहीं थी। ब्लैकवालोंके पास भी अन्नका अभाव हो गया था। अतः सुबहसे ही अनाजकी खोज जारी कर दी गयी, पर जो भी बाहर जाता, निराश होकर खाली हाथ लौट आता। दोपहरतक कुछ बनते न देखकर संध्याको कुछ-न-कुछ मिल ही जायगा,—इस निराधार आशासे जी कड़ा करके दोपहरका समय बिना भोजनके निकाल दिया।

सुबह जो हवा थी, वही संध्याको भी कायम है। इस बातका निश्चय करनेके लिये हमें कुछ कम प्रयास नहीं करने पड़े। किंतु अब कलेजा मुँहको ओर आने लगा। सब लोग भूखसे व्याकुल होने लगे। किस प्रकार अन्न प्राप्त करें? इस विकट प्रश्नने हमें चक्करमें डाल दिया। इसी समय—

स्व० श्रीशिवाजी लाड—जिनसे हमारा वर्षोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था, अकस्मात् हमारे घर आये। पिताजीसे अपने पूर्वजीवनकी कुछ जूनी-पुरानी बातें करनेमें उन्हें विशेष आनन्द आता और इसीलिये वे कभी-कभी पिताजीसे बातें करने चले आया करते थे। इनकी धार्मिक कार्योंके प्रति भी विशेष रुचि थी। इसीका परिणाम यह हुआ था कि आर्थिक अवस्था साधारण होनेपर भी आप द्वारका और बद्री-केदार—दोनों धामोंकी यात्रा कर चुके थे। एवं शेष दोनों धामोंकी यात्रा करनेके विचारमें थे।

घरकी खेती होनेके कारण इनका अपना कारोबार ठीक था। लड़के भी कमानेवाले और समझदार थे। किसी बातकी चिन्ता करने-जैसी अवस्था न थी।

उन्होंने घरमें प्रवेश किया। हमारे बहुत-कुछ मना करनेपर भी, घरकी वर्तमान कहानीको हमारे मुरझाये चेहरोंने, उनकी तजुर्बेकार आँखोंके सामने प्रकट कर दिया। वे तुरंत वापस लौट गये।

कुछ ही मिनटोंके बाद देखते हैं, श्रीलाड महोदय स्वयं अनाजकी गठरी उठाये हमारे घरमें पुनः उपस्थित हैं। यह दृश्य देखकर हम सब एक ही साथ आश्चर्य और उनकी उदारताके प्रति श्रद्धामें डूब गये।

उनसे माँगनेपर अन्न मिल जायगा, यह तो हम पहलेसे ही जानते थे। इसके पूर्व अनेकों बार उनके द्वारा हम लाभ भी उठा चुके थे। किंतु अन्नकी तंगीके इस जमानेमें सुहृदोंको बार-बार कष्ट देना ठीक नहीं,

यह विचारकर उनको धर्म-संकटमें डालना हम उचित नहीं समझते थे। इसीसे उनसे कुछ कहा नहीं था। आज वे स्वयं ले आये। हमें भी अनाजकी अत्यावश्यकता थी ही। अतः हमने गठरी रखवा ली। कृतज्ञताके भावसे हमारे सिर झुक गये थे। अन्न वैसे बहुत अधिक नहीं था, पर इस समय तो एक-एक दाना बहुमूल्य था। इस अद्भुत दाताकी ओर देखें भी तो कैसे? हमारे मस्तक हार्दिक कृतज्ञतासे झुक रहे थे।

अनाज माप लिया और पिताजी बाजार-भावसे उसकी कीमत देने लगे। ब्लैक मार्केटकी कीमत चुकाना उनसे दुराव दिखाने-जैसा था। हमारे सारे परिवारको, जिसने उपकृत किया, उसका अपमान भला हम कैसे कर सकते थे?

पर बात यहीं समाप्त नहीं हो गयी। हमारे इस दाताने एक ऐसा खेल दिखाया कि जिसे देखकर हम तो दंग रह गये। पिताजी जब उन्हें पैसे देने लगे तब उन्होंने कहा—'मैं व्यापारी तो हूँ नहीं जो आपसे कीमत लूँ। अनाज बेचना मेरा धर्म नहीं है। यह तो मैंने केवल अपने कर्तव्यका पालन किया है।'

देवदूतके इस वाक्यका उत्तर हम साधारण मानवी दें भी तो क्या दें? उनका औदार्य और सौहार्द हमारे मनको साक्षात्कारकी ओर ले जा रहा था।

—नामदेव वाडेकर नवापुर

(४)

आदर्श मानवता

एक अमेरिकन नागरिक व्यापारीको अपने काममें एक दिन कुछ ऐसा कड़ा अनुभव हुआ कि जिससे उनके मनमें क्षोभ हो गया। वे उसी क्षुब्धावस्थामें सूने-से घूमते हुए शीघ्रताके साथ समुद्र-तटकी ओर जाने लगे।

उधरसे निकलते हुए एक दूसरे धनी व्यापारीने उन्हें देखा। उनमें समवेदना जगी और उन्होंने समझा कि ये कोई जीवनसंग्राममें ऊबे हुए दुखी नागरिक हैं, जो समुद्रमें कूदकर जीवनका अन्त करनेके लिये दौड़े जा रहे हैं। उन धनी व्यापारीको दया आयी, उन्होंने बिना ही गहरा विचार किये अपनी जेबसे दो डालर निकाले और साथ ही अपने नाम-पतेवाला कार्ड निकालकर कहा—'लीजिये भाई! यह मेरा कार्ड है, इसमें मेरे आफिसका पता छपा है। इस कार्डके साथ कल मुझसे मिलियेगा। मैं यथासमय उस समय आपकी सहायता करूँगा।' यह कहकर उन्होंने दो डालर और अपना कार्ड उन नागरिकके हाथमें दे दिया और अपना रास्ता पकड़ा। वे नागरिक भी लौट आये। प्रसंगकी बात अस्पष्ट ही रही।

अमेरिकन नागरिकने सोचा—'इस व्यापारीसे मेरी कोई जान-पहचान नहीं है। ये दयालु प्रतीत होते हैं, इन्होंने मुझे क्या समझा होगा? मैं गरीब हूँ, यही माना होगा? और मैं आत्महत्या करनेके लिये कहीं समुद्रमें कूदनेवाला हूँ, यह समझकर मुझे बचानेके उद्देश्यसे इन्होंने दो डालर दिये होंगे! भगवान्‌की मुझपर दया है। मैं तो केवल आवेशमें आकर ही समुद्र-तटपर शान्तिके लिये गया था। खैर, जो हुआ, अच्छा ही हुआ।'

वे नागरिक भी करोड़पति थे। दिन-पर-दिन बीतने लगे। वह नाम-पतेवाला कार्ड उन्होंने अपनी टेबलपर ही रख छोड़ा। रोज कृतज्ञतासे उस कार्डके दर्शन करते हैं; पर उनसे मिलनेके लिये वे उनके आफिसमें नहीं जा सके।

एक दिन वे नागरिक अपनी पत्नीके सहित टेबलके सामने बैठे थे। अचानक एक दैनिक समाचार-पत्र आया। नागरिक पहला पृष्ठ देखने लगे। उसमें बड़े-बड़े टाइपोंमें वह कार्डवाला नाम-पता छपा

था और नीचे लिखा था—घाटा लगनेके कारण यह फार्म फेल हो गया है, पावनेदार आज तकाजा कर रहे हैं। फार्मके मालिकका पता नहीं है। इस सम्भ्रान्त कुटुम्बपर बहुत बड़ी विपत्ति आ गयी है। हजारों मनुष्योंको दान करनेवाले इस कुटुम्बपर भगवान्‌की कृपादृष्टि हो तो बड़ा अच्छा हो।'

पढ़नेवाले नागरिक इतना पढ़ते ही गद्गद हो गये, वे अचानक उठ खड़े हुए। दूसरी ओर जाकर अपने मुनीमसे मिले और इतना ही बोले—'चलो, अभी मेरे साथ, मोटर तैयार करवाओ। तुरंत चलना है; बात करनेके लिये अवकाश नहीं है।'

यों कहकर वे अपनी तिजूरीके पास गये। खोलकर किताब-जैसी कोई चीज निकालकर उसे कोटके अंदरकी जेबमें सरका दिया। मुनीम और मोटर तैयार थे। मोटर कार्डपर छपे नाम-पतेवाले स्थानपर जा पहुँची। नागरिकने उक्त फार्मके मुनीमको अलग ले जाकर पूछा—'भाई! मालिक कहाँ हैं? मुझे उनसे अभी खास काम है, जल्दी करो, तुरंत बताओ, देर मत करो।'

परंतु मुनीम मालिकका पता कहाँसे बतलाता? मुनीमने समझा—'ये भी पावनेदारोंमेंसे कोई होंगे। मालिकका पता बता दूँगा तो ये वहाँ पहुँचकर अपनी रकमके लिये उन्हें हैरान करेंगे।' अतः उसने कहा—'मुझे मालिकका पता नहीं है।'

उस नागरिकने कहा—'भाई! तुमको जो पता हो, वही मुझे बताओ। मैं तुम्हारे मालिकका पावनेदार नहीं हूँ। उनकी विपत्तिमें हिस्सा बँटानेकी मेरी इच्छा है, बताओ भाई! जल्दी बताओ।'

अन्तमें नागरिकने कहा—'बताओ मुनीमजी! सेठको कितनी रकमकी जरूरत है? तुम बताओ, उतनी रकमका मैं चेक लिख दूँ, फिर क्या बात है?'

इतना सुनते ही मुनीम—उक्त धनी सद्‌गृहस्थके पवित्र हृदयके भावको समझ गया और उसने उनको मालिकका पता बता दिया। पता मिलते ही वे अपने मुनीमके साथ वहाँ जानेके लिये मोटरपर सवार हो गये।

उन विपत्तिग्रस्त व्यापारीको दूरसे अपनी ओर आती एक मोटर दिखायी दी। उनका दिल धड़कने लगा—कोई पावनेदार आ रहा है; परंतु अच्छी तरहसे देखनेपर उसे कोई परिचित-सा दिखायी दिया।

मोटर समीप आ गयी थी। नागरिक और मुनीम दोनों उनके पास जा पहुँचे। नागरिकने उनके सामने उस नाम-पतेवाले कार्डको रख दिया। सारी चीजें साफ हो गयीं।

उक्त व्यापारीने कहा—'भाई! मैंने आपको यह कार्ड दिया था और मुझसे मिलनेके लिये भी आपसे कहा था; पर इस समय तो मेरी स्थिति बदल गयी है। आप उस समय आये होते तो मैं अवश्य कुछ सहायता करता।'

हमारे वे आगन्तुक नागरिक तो व्यापारीकी यह बात सुनकर तथा उनकी भावना देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने उनको बीचमें ही रोककर कहा—'महाशयजी! इस समय मैं आपसे कुछ लेनेकी इच्छासे नहीं आया हूँ; पर अपने एक सहृदय और मानवतापूर्ण मित्रके दुःखमें हिस्सेदार होने आया हूँ। आप जरा भी घबरायें नहीं। बताइये—आपको कितनी रकमकी आवश्यकता है? आप संकोच मत कीजिये। जितनी रकम चाहिये—बताइये। यह लीजिये—चेकबुक, लिखिये इसपर।' यों कहकर उन्होंने अंदरकी जेबसे चेकबुक निकालकर उक्त व्यापारीके हाथमें दे दी।

विपत्तिग्रस्त व्यापारीने सकुचाते-सकुचाते चेकबुकपर लिखा—४०,००,००० (चालीस लाख) डालर। तुरंत ही उस नागरिकने चेकपर अपनी सही कर दी

और उसे फाड़कर नागरिक व्यापारीके हाथमें दे दिया।

नमन करके, आभारके शब्द सुननेसे पहले ही वे अपने मुनीमके साथ बँगलेसे नीचे उतरे और मोटरमें बैठकर चले गये। इधर विषादग्रस्त वातावरणमें आनन्दकी तरङ्गें लहराने लगीं। (अखण्ड आनन्द)

—उमियाशंकर ठाकर

(५)

गणेशजीकी अनुकम्पा

हमारे जीवनमें कई अलौकिक घटनाएँ घटती हैं, जिन्हें हम अपनी अज्ञानताके कारण ईश्वरीय चमत्कार न समझकर केवल संयोग समझ लेते हैं।

निराशाके अन्धकारमें ईश्वरीय श्रद्धा किस प्रकार आशा एवं सफलताकी किरणें बिखेरती है इसका ज्वलन्त उदाहरण मेरे साथ घटा है।

गतवर्ष मैं राजस्थानके एक कालेजमें प्राध्यापक था। वह नियुक्ति अस्थायी तौरपर थी। वर्ष व्यतीत होनेपर पद त्यागना पड़ा। ग्रीष्मके अवकाशमें कई जगह नियुक्तिके लिये प्रार्थनापत्र भेजे; पर नियुक्ति कहीं भी नहीं हुई। जुलाईका पूरा मास निकल गया। एम्० एस्-सी०में प्रथम श्रेणी तथा विश्वविद्यालयमें विशेष स्थान प्राप्त कर सफलता पानेपर भी नियुक्ति न होना आश्चर्यजनक बात थी। मेरे मित्रों तथा सम्बन्धियोंको भी आश्चर्य हुआ। उन दिनों मैं सवाई माधोपुरमें अपने अग्रज भ्राताके पास था। मेरे आराध्यदेव प्रारम्भसे ही भगवान् गणेश रहे हैं।

रणथम्भौर दुर्ग सवाई माधोपुरसे नौ मील ही दूर है। अभेद्य दुर्ग रणथम्भौरके गणेशजी राजस्थानमें ही नहीं, भारतमें प्रसिद्ध हैं। मैंने कई बार गणेशजीके दर्शन किये थे। धर्मप्रेमी श्रद्धालु जनताकी उनमें पूरी आस्था है। वे सबकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। भाद्र शुक्ल चतुर्थीको वहाँ एक बड़ा मेला भी लगता है।

मन्दिर अति प्राचीन है। राणा हमीर देवके समय-का कहा जाता है।

अस्तु, एक दिन मैं सपरिवार भगवान् गणपतिके दर्शनको गया।

कहीं भी नियुक्ति न मिलनेसे मनमें निराशा थी। मैंने अपनी जटिल समस्या भगवान् विघ्नविनाशकके सामने रक्खी।

दर्शन कर पुनः घर लौटा। पहुँचनेपर नौकरने मुझे एक लिफाफा दिया, जो उसी समय डाकसे आया था। मैंने उसे खोला। वह नियुक्ति-पत्र था। मेरी नियुक्ति राजस्थानके ही एक कॉलेजमें प्राध्यापकके पदपर हो गयी थी। आप इसे केवल संयोगमात्र ही कहेंगे; पर मुझे विश्वास है कि यह भगवान् एकदन्त-की ही कृपाका परिणाम था, जिससे मेरी जटिल समस्या सुलझी। यही नहीं, इसके पश्चात् तीन और लगातार अन्य प्रान्तोंसे नियुक्ति-पत्र मिले।

भगवान् गणेशने हमारी और भी अनेक समस्याओं-को सुलझाया है। कई बार उन्होंने मुझे मृत्योन्मुख रोगोंसे बचाया है। उनकी कृपासे अनेक विपत्तियाँ समाप्त हुईं। गणेशचालीसा एवं गणेश-स्तोत्रके पाठसे आध्यात्मिक एवं मानसिक शान्ति मिली। वास्तवमें भगवान् गणेश विघ्नविनाशक हैं।

—प्रो० श्याममनोहर व्यास एम्० एस्-सी०

श्रीगोयन्दकाजीके सम्बन्धमें आवश्यक सूचना

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका स्वास्थ्य ठीक न रहनेके कारण उनका ३१ मार्चतक गीताभवन, ऋषिकेश जाना नहीं हो सकेगा। स्वास्थ्य ठीक रहा तो शायद १५ अप्रैलतक वे जा सकते हैं। इसी कारण पत्रोंका उत्तर लिखनेमें भी उन्हें असुविधा होती है। अतएव सबसे निवेदन है कि बहुत आवश्यक होनेपर ही उन्हें पत्र लिखें। उनके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें पूछ-ताछ करनी हो तो 'श्रीमोहनलाल गोयनका, गोयनका हाउस, बाँकुड़ा'के नामसे या मेरे नामसे पत्र लिखनेकी कृपा करें।

बजरंगलाल चाँदगोठिया

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके लेखोंकी एक नयी पुस्तक

आत्मोद्धारके साधन

आकार डबलक्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४७०, चार सुन्दर बहुरंगे चित्र, मूल्य १.२५, डाकखर्च १.०५, कुल २.३०।

श्रीगोयन्दकाजीके जो लेख समय-समयपर 'कल्याण' मासिकपत्रमें निकलते हैं, उनके पुस्तकाकार संग्रहके लिये प्रेमी सज्जनोंका सदा ही आग्रह रहता है। ऐसे ही कुछ भाइयोंके विशेष आग्रहसे 'कल्याण'के ३७ वें वर्षतक प्रकाशित २९ लेखोंके साथ 'मासिक महाभारत' में प्रकाशित 'महाभारतमें जीवनको उन्नत बनानेवाले कुछ शिक्षाप्रद प्रसङ्ग' शीर्षक लेखको सम्मिलित करके यह एक नवीन संग्रह प्रकाशित किया गया है।

प्रस्तुत संग्रहमें मानवमात्रकी सर्वविध उन्नतिके लिये गुरु-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, ईश्वरभक्ति, पातिव्रत, तप, सत्य, न्याय, वर्णाश्रम-धर्म, तीर्थमहिमा, अतिथियों और गौओंकी सेवा, निष्काम कर्म, भक्ति, प्रेम, ज्ञान, सदाचार, संयम, वैराग्य आदि साधनोंकी अवश्यकर्तव्यता, सफलताके उपाय, साधनके विघ्न आदि विषयोंके अतिरिक्त भगवान् और महात्माओंके स्वरूप, प्रभाव और स्वभाव आदिका दिग्दर्शन है।

☞ पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेके पहले अपने शहरके पुस्तक-विक्रेताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। विक्रेतागण प्रायः हमारी पुस्तकोंपर छपे हुए दामोंपर ही पुस्तकें बेचते हैं; क्योंकि उन्हें कमीशन, यथाधिकार विशेष कमीशन तथा रेलभाड़ा यहाँसे दिया जाता है। अतः उनके यहाँसे लेनेपर आपको भारी डाकखर्च एवं समयकी बचत हो सकती है।

निम्नलिखित स्थानोंपर गीताप्रेसकी निजी दूकानें हैं, जहाँ कल्याण तथा कल्याण-कल्पतरुके ग्राहक भी बनाये जाते हैं।

१—**कलकत्ता**—श्रीगोविन्द-भवन-कार्यालय, पता—नं० १५१, महात्मा गाँधी रोड तथा नं० ३०, बाँसतल्ला गली।

२—**दिल्ली**—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान, पता—नं० २६०९, नई सड़क।

३—**पटना**— ,, ,, ,, पता—अशोक राजपथ।

४—**कानपुर**— ,, ,, ,, पता—नं० २४।५५ बिरहाना रोड।

५—**हरिद्वार**— ,, ,, ,, पता—सब्जी मंडी, मोतीबजार।

६—**वाराणसी**—गीताप्रेस कागज एजेंसी, पता—नं० ५९।९, नीची बाग।

७—**स्वर्गाश्रम**—गीता-भवन, मुनिकी रेती, ऋषिकेशके सामने गंगापार।

दिल्ली, कानपुर, गोरखपुर, हरिद्वार तथा वाराणसी—इन पाँच स्थानोंपर तो रेलवे-स्टेशनोंपर हमारे निजी पुस्तक-स्टाल भी हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

रजि० सं० एल्० १७५

'कल्याण'के ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें कुछ स्पष्टीकरण

(१) वर्षके आरम्भमें निकलनेवाला विशेषाङ्क (बड़ा अङ्क) ही जनवरीका अङ्क होता है। उसके अतिरिक्त जनवरीका कोई अलग छोटा अङ्क नहीं होता।

(२) नये-पुराने सभी ग्राहकोंकी सेवामें, चालू वर्षका—जनवरीका विशेषाङ्क तथा फरवरीसे दिसम्बरतकके ११ साधारण छोटे अङ्क प्रतिमास भेजे जाया करते हैं।

(३) विशेषाङ्क रजिस्ट्री अथवा वी० पी० से ही भेजा जाता है, अतएव विशेषाङ्कको समस्त ग्राहकोंकी सेवामें पहुँचाते-पहुँचाते प्रायः फरवरी महीना बीत जाता है। कारण डाकघरके अधिकारी प्रतिदिन सीमित संख्यामें ही रजिस्ट्री एवं वी० पी०के पैकेट लेते हैं। फिर वी० पी०से भेजे गये अङ्कोंका रुपया कार्यालयको प्राप्त होनेमें, उन्हें ग्राहकोंके रजिस्टरोंमें चढ़ानेमें तथा जमा-खर्च होने एवं अन्य व्यवस्था करनेमें पर्याप्त समय लग जाता है। विलम्ब होनेके कुछ अन्य अनिवार्य कारण भी होते हैं। अतः विशेषाङ्कके बाद फरवरी और मार्चके अङ्क, हम चाहते हुए भी, सभी ग्राहकोंको यथासमय नहीं भेज पाते। हम जानते हैं कि नियमित पाठकोंको समयपर अङ्क न मिलनेसे आतुरता एवं जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है; परंतु परिस्थितिजन्य हमारी विवशताको हृदयङ्गम कर वे हमें कृपापूर्वक क्षमा करेंगे।

(४) प्रत्येक पुराने ग्राहकको चाहिये कि वे अपने पत्रोंमें तथा मनीआर्डर-कूपनपर अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें; जिससे उनका कार्य होनेमें सुगमता एवं सरलता हो। मनीआर्डरपर ग्राहक-संख्या न रहनेसे कई बार ग्राहकोंके रुपये नयी ग्राहक-संख्यापर जमा हो जाते हैं, फलतः उनके पास पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० भी चली जाती है और नयी ग्राहक-संख्यासे रजिस्ट्री भी। जिससे हमें तथा स्वयं उनको पर्याप्त परेशानी, कष्ट एवं व्यय उठाना पड़ जाता है। अतः उनसे ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनेकी प्रार्थना की जाती है।

(५) नाम, पता, डाकखाना एवं जिला, अंग्रेजी और हिंदी दोनोंमें बड़े तथा साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे ठीक पतेपर आपको 'कल्याण' मिलनेमें तथा पत्रोंका उत्तर प्राप्त करनेमें कठिनाई न हो।

व्यवस्थापक—

'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)